शाकद्वीपीय ब्राह्मणबन्धु परिवार पुस्तकमाला-सप्तम् पु०

[प्रथम भाग]

दक्षिणा ४) रुपये

श्री साम्ब पुराण

[प्रथम भाग]

स्वर्गीया

माता

सुकुन्द कुमारी देवीको

श्रद्धासहित

समर्पित

दो शब्द

हम आज यह अद्भुत और अमूल्य निधि, हिंदी जगत, समस्त धार्मिक संसार, आस्तिक-समाज, सूर्य-ब्रह्मोपासक जनता और ब्रह्मवेत्ताजनोंके लिये सुलभ किये देते हैं। एक प्रकारसे यह निधि हमारी २० वर्षीय तपस्याओंका सुमधुर फल है जो हमने "बन्धु" के द्वारा की हैं। इसको प्रकाशित करते हुए हम अपनेको वास्तवमें कृतार्थ मानते हैं।

हमारे परमप्रिय बन्धु पण्डित श्रीनिरंजन शर्मा अजितने यह महत् उपकार किया है कि इस दुर्लभ निधिको शाकद्वीपीय ब्राह्मणबन्धुके प्राणरक्षक-कोषकी श्रीवृद्धिके लिये प्रदान करनेकी कृपा की है। इसके लिये अजितजी शतशत धन्यवादके अधिकारी हैं। उन्हींकी प्रेरणासे, उन्हींके श्रमसे, उन्हींकी सुयोग्यतासे और उन्हींकी कृपासे यह कार्य सम्पन्न हुआ है। शाकद्वीपीय-ब्राह्मण समाजका मस्तक ऊंचा करनेवाले ग्रन्थोंकी रत्नमालामें उनका यह छटा रत्न है।

कितने दिनोंसे सूर्योपासना, वास्तविक रूपमें, लुप्त होगयी है, यह कहना कठिन है। पर इस समय हमारे सम्मुख दो विषम स्थितियां समुपस्थित हैं-एक यह कि सूर्यब्रह्मोपासना और तत्सम्बन्धी वेदान्तज्ञानको स्वयम् वे लोगभी भूल गये हैं जिनके कन्धोंपर इस कल्याणकारी विषयके प्रचारका भार था, दूसरी यह कि हमारे यहांके विचित्र पण्डितजनोंने आजतक अपने नामका काम ऊंचा नहीं किया और जोभी पुस्तकें जुदे-जुदे प्रकाशन-मन्दिरोंसे निकली हैं वे अयोग्य, वास्तविक-ज्ञानरहित और ईर्षाद्वेषबुद्धिसे प्रेरित व्यक्तियों द्वारा सम्पादित होनेके कारण प्रायः सदोषही रही हैं। इस

स्थितिमें, शुद्ध शास्त्र-सम्मत स्वरूपमें, सूर्यब्रह्मोपासनापरक ग्रन्थरत्नोंको प्रकाशमें लानेका श्रीगणेश श्रीयुत अजितजीनेही किया है।

हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। साथही शाकद्वीपीय-ब्राह्मण बन्धुके संरक्षकों, प्रेमियों और कृतविद्य सहायकोंको भी धन्यवाद देते हैं।

हमें आशा है कि श्री साम्बपुराणका जगतमें प्रचार होगा और सूर्यनारायणका जयजयकार, दु:खदारिद्रय तथा अश्रद्धा–भक्तिके अन्धकारके नाशकी सूचना देनेवाली दुन्दुभीके रूपमें, घरघर ध्वनित हो जायगा।

हमने निश्चय यह किया था कि यह निधि सूर्यजयन्तीके समयही भेट की जाय। पूर्वकार्यक्रमानुसार यह कार्य संवत् २००० में ही सम्पन्न हो जाना चाहिये था। पर भगवदिच्छासे ऐसा न हो सका। सामग्री तो इसके कई मास पूर्वही देदी गयी थी, पर मुद्रण कार्यका श्रीगणेश मार्च १९४४ ई. के पूर्व न हो सका। प्रारम्भमें, प्रेसमें, मोटे टाइपकी कमीसे विलम्ब होता चला गया, अन्तमें कुछ दिन लेखककी अस्वस्थता और विभिन्न कार्यों एवं चौमुखी क्रियाशीलताओंकी अनिवार्यतामें निकल गये। इस प्रकार संवत् २००१ में, हम, यह भेट उपस्थित कर पाये हैं। पर यह प्रसन्नताकी बात है कि सूर्यनारायणकी कृपासे सूर्यसप्तमीके दिन ही यह कार्य सम्पन्नताको पहुँच रहा है।

कृपैषी

प्राणशंकर कुंवरजी शर्मा

प्रकाशक

प्राक्कथन

हिन्दू धर्म, संसारके सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है। वास्तवमें यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि भारतीय आर्यगणोंके ऋषिमुनियों और आचार्योंके अतिरिक्त अन्य लोगोंने धर्मके स्वरूप और उसके तत्वको समझनेकी प्रवृत्तितक नहीं पायी है। जिसे संसारमें मजहब या रिलीजनके नामसे पुकारा जाता है वह तो वास्तवमें हिन्दूधर्मके अन्तर्गत प्रचलित सम्प्रदायोंसे भी छोटी वस्तु है। सामान्यत, हम मजहब और रिलीजनका अनुवाद हिन्दी या संस्कृतमें धर्म शब्दमें कर लेते हैं। पर उसका अनुवाद केवल धर्म-मार्ग या पंथ मात्र है। मार्ग या पंथ किसी सम्प्रदायके अन्तर्गतही होते हैं। सम्प्रदायकी रचना एक इष्टदेवकी अनन्य उपासनाको लेकर उसके प्रवर्तक आचार्यद्वारा की जाती है। हिन्दू धर्ममें कई सम्प्रदाय हैं और प्रत्येक सम्प्रदायके अन्तर्गत कई-कई मत, मार्ग या पंथ हैं। इन सबके समूहका नाम हिन्दू धर्म है।

लोकतंत्रवादकी दुहाई देनेवाले और मत-स्वातंत्र्यको सर्वोपरि गिननेवाले आधुनिक वैज्ञानिक और समाज एवं धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता विद्वान हिन्दू धर्मको प्रतिपादनीय नहीं ठहराते क्योंकि उनकी समझमें मतस्वातंत्र्य और लोकमतवाद राजनीतिक या सामाजिक जीवनके एक कोनेमेंही पड़ी रहनेवाली वस्तु है। हिन्दूधर्म इसको

आध्यात्म जगतमें भी ले जाता है। वह गुणत्रयके अधिष्ठाताओंको मान देकर (१) सृष्टिका सर्जन करनेवाले ब्रह्मा (२) पालन करनेवाले विष्णु और (३) संहार करनेवाले शंकरके सम्प्रदायोंमें धार्मिक जगतको बांट लेता है। इसका विकसित रूप पञ्चदेवोपासना है जो पांच महातत्वोंके अधिष्ठाता देवताओंकी उपासनासे परिपूर्ण है। वास्तवमें सृष्टि स्थिति और प्रलय इन पांच महाशक्तियोंके बलपरही होती रहती है:—

(१) सूर्य
(२) शंकर
(३) विष्णु
(४) दुर्गा और
(५) गणेश

सामान्य हिन्दू धर्मानुयायी प्रत्येक गृहस्थका यही कर्त्तव्य है कि वह पंचदेवोपासक रहे। पर जो लोग सामान्य धार्मिक जीवनसे आगे बढ़ते हुए ऊंचे होनेके इच्छुक हैं वे किसी एक देवताको इष्ट मानकर उसकी अनन्य उपासना करने लगते हैं। यह अवस्था एक प्रकारसे धार्मिक सोपानकी द्वितीय सीढ़ी है।

१ सूर्यके अनन्य उपासक सौर या वैवस्वत कहलाते हैं।
२ शंकरके अनन्य उपासक शैव या स्मार्त कहलाते हैं।
३ विष्णुके अनन्य उपासक वैष्णव कहलाते हैं।

४ दुर्गाके अनन्य उपासक शाक्त कहलावे हैं। और
५ गणेशजीके अनन्य उपासक गाणपत्य कहलावे हैं

वर्त्तमान कालीन भारतमें (१) वैष्णव (२) शैव (३) शाक्त सम्प्रदायोंके मठ-मंदिर-पीठादि विद्यमान हैं, पर शेषोंकी सम्प्रदाय-श्रृङ्खला अस्तव्यस्त होगयी है। इन तीनोंमें भी तृतीय सम्प्रदायका संगठन प्रचार-प्रभाव यथोचित नहीं है। दुनियाके अल्हड़ोंने तृतीय सम्प्रदायको बदनाम करनेके लिये यथेष्ठ प्रयत्न किये हैं, पर शक्ति-उपासना केवल महाशक्तिके चमत्कारके बलपरही सही सलामत है; सम्प्रदायका विशद, विशुद्ध और सुशृंखलित रूप चाहे भले ही नहो।

श्री गणेशजीकी उपासना महाराष्ट्रमें यत्किंचित शेष है, सम्प्रदायका अस्तित्व वहाँभी नहीं है। अन्यत्र हम इनकी उपासना या पूजा केवल मांगलिक कार्योंमें, विघ्न-विनाशार्थही, करके रह जाते हैं।

सूर्योपासना अपने अस्तित्वको खोती चली गयी है। इस समय सूर्य या भास्कर सम्प्रदाय लुप्त हो गया है। उसके मठोंका और उसकी आचार्य परम्पराका नामतक नहीं रहा है। इन दिनों सूर्योपासना, उनके द्वितीय सर्वग्रहपतिके रूपमेंही रह गयी है। किन्तु मूलतः यह बात नहीं है। प्राचीन ग्रन्थोंका आलोडन करनेसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि भारतमें भास्कर सम्प्रदाय, किसी समय, सम्पूर्ण प्रभावपूर्ण स्थितिमें प्रचलित था। भगवान् विष्णुके

मुख्य और महान दो अवतारोंने (श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण चन्द्रने) सूर्यकी उपासना की है। श्रीकृष्णचन्द्रने तो सूर्योपासना-का प्रचार श्रीमुखसे स्वयम् किया है—इसप्रकार, वे उसके सर्वोपरि समर्थक आचार्यके समान हैं। कालक्रमसे यह चीज लुप्तप्राय होगयी है। इसीसे मूर्ख, धूर्त्त और वास्तविक ज्ञान रहित विदेशी जीव, सूर्योपासनाको बाहरकी वस्तु कहने लग गये हैं। यही कारण है कि हमने इस निधिको पुनः सत्यसमन्वित रूपमें भेट किया है।

किसी समय सूर्योपासना और शिवोपासनाने इतना अधिक प्रभाव दिखलाया था कि दूसरे धर्मोंवाले भी इसको मानने लगे थे। पुराणोंमें बारबार यह उल्लेख मिलता है कि अमुक अमुक दैत्य या दानवनेभी शिव या सूर्यकी उपासना करके अमुक अमुक वर प्राप्त कर लिये थे। आधुनिक इतिहासकी प्रारम्भिक भूमिकावाले कालमें भी सूर्योपासना और शिवोपासना विदेशियों तकमें मान्य थी; इसके अनेक प्रमाण और उदाहरण उपलब्ध हैं। इन प्रमाणोंको प्रतिकूल महत्व देनेवाले यह मान लेते हैं कि यह चीजें बाहरसे हिंदूधर्ममें लायी गयी हैं। किन्तु सत्य बात यह है कि हिन्दूधर्मके सर्वग्राही, सर्वलोकप्रिय और सर्वकल्याणकारी स्वरूपोंकी एक-दो झलक अन्यत्र भी फैल गयी थी। इसका थोडा-बहुत अंश अबभी शेष है।

पुराणोंमें जो सर्वेश्वरके नामपर मतभेद दिखाई देता है वह इसी लिये है। उनमें अनन्य उपासनाका प्रभाव किसी एक

देवताको सबसे ऊंचा बतलाता रहता है। हिन्दूधर्म इस बस्तुको दोष या भूल नहीं मानता। अन्ततः यह पांच महा इष्ट देव एकही महाशक्तिके विकास मात्रही तो हैं। इनमें मूल और प्रधान शक्तिको कोई इस नामसे पूजता है, तो कोई उस नामसे; जैसाकि कहा गया है— "किसी भी देवताको आप नमस्कार कीजिये वह श्रीकृष्ण कोही पहुंच जाता है।" यह महावाक्य वैष्णवविद्वानोंका परम-मान्य वाक्य है। पर इसको सबके लिये समानही समझना चाहिये। हम इसी बातको इस प्रकारसे भी कह सकते हैं कि किसी भी देवताको आप नमस्कार कीजिये वह सबका सब सूर्यनारायणको ही पहुंच जाता है।

विद्वज्जनोंका कथन है कि "जैसा पिण्डका क्रम है वैसाही ब्रह्माण्डका क्रमभी है।" परब्रह्मने थोड़े विकासोन्मुख और सृष्टिसर्जनोन्मुख होनेपर पांच महादेवताओंका यह रूप क्यों लिया है, यह रहस्य परम विज्ञजनोंके चिन्तन करनेकी वस्तु है। ब्रह्माण्डकी सदृशतामें आत्मबन सूर्य-नारायणका अणुरूप "आत्मा" बनकर शरीरमें प्रवेश करता है। आत्मा ब्रह्मकाही स्वरूप है, वह ब्रह्मकी भांतिही, स्वयम् अलिप्त रहता है और अपनी छायाको "प्राण" रूपमें उसी प्रकार लाता है जिस प्रकार निराकार परब्रह्म अपनी छायाको सूर्यमण्डलके रूपमें परिवर्त्तित करता है। तदनन्तर एकही प्राण, पांचप्राणोंके रूपमें उसी प्रकार विभक्त होकर शरीरमें राज करता है जिस प्रकारसे सूर्यनारायण पाँच महा-

विभूतियोंका रूप लेकर ब्रह्माण्डका स्वामित्व करते हैं। ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्डकी यह सदृशता सब संशयोंका नाश करनेवाली और हृदयकी ग्रन्थिको खोलनेवाली है। ब्रह्माण्डमें जिस प्रकार पांच महाविभूतियां मुख्यतः पांच महातत्वोंका नियन्त्रण करती हैं, उसी क्रमसे शरीरके भीतरके पांच तत्वोंका नियंत्रण-संचालन-स्वामित्व प्राण-उदान-समानादि में विभक्त होकर प्राण करता है। प्रश्नोपनिषद्में कहा गया है कि "आदित्यो ह वै प्राणो।"

यह एक तात्विक विषय हमने वर्णनक्रमागत मानकर वर्णित कर दिया है। हमारा विचार इसमें अधिक विस्तार करनेका नहीं है। सूर्यनारायणका विश्वेश्वरत्व, उनकी दयालुता और भक्तजनोंके प्रति उनकी अनुकम्पा आदि समस्त विषय इस पुराणमें संक्षिप्त रूपमें आही गये हैं। निश्चयही इसके पाठसे शास्त्रोक्त फलकी प्राप्ति होती है। इसीलिये अपनी ओरसे हम अधिक लिखना उचित नहीं समझते।

पांच महा शक्तियाके रूपम प्रकट होनेसे परब्रह्म परमात्मा किस रूपमें था इस विषयमें अनन्य भक्ति और सम्प्रदायोंके नामपर ऊपरी मतभेद दृष्टिगोचर होता है। वैष्णव सिद्धांत है कि सर्वप्रथम सर्वोपरि महाशक्ति नारायणके रूपमें प्रकट हुई थी। शैव मानते हैं कि यह शक्ति शिवरूपमें थी। सूर्यनारायणके अनन्यभक्त यह मानते हैं कि परब्रह्म, सर्वप्रथम, एकसे अनेक

होनेकी भावनासे प्रफुल्लित, प्रज्वलित और प्रकाशित होकर सूर्य-नारायणके रूपमें प्रकट हुए थे। तदनन्तर वे एकसे अनेक होते चले गये।

सूर्यनारायणके दृश्यजगतमें आकर सृष्टिरचना करनेके सम्बन्धमें और अन्तिम मोक्ष सूर्य लोकमें ही होनेके सम्बन्धमें वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, सब एकमत हैं। सबका यही मत है कि सृष्टि सूर्यनारायणसेही उत्पन्न हुई है और उन्हींमें लय होजायगी। इतनी स्पष्टता शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, दुर्गा या गणेशजीके सम्बन्धमें नहीं मिलती। यही नहीं वेदोपनिषद्के सूर्यसम्प्रदाय सम्मत विकासको आधुनिक विज्ञान भी सोलहआने स्वीकार कर लेता है। सनातन हिन्दूधर्मकी इस तात्त्विक विजयके सामने विज्ञान नतमस्तक है। वेदोपनिषदादिमें स्पष्ट रूपमें यही तो आता है कि-सृष्टिमें पूर्व समस्त चराचर जगतका अधिष्ठाता हिरण्यगर्भ ही है-वही सबका स्वामी है, वही सबसे पहले स्वयम् पैदा हुआ है और वही सबका नियन्ता है।

यही विज्ञान और धर्मज्ञान सम्मत बात है। यहापर सौ सुजानोंका एकही मत रहता है।

इस तरह सूर्योपासनाकी महिमा, उसकी यथार्थता, और उसकी प्रखरता सबमें अधिक बढ़ जाती है। जबतक परब्रह्मने एकसे अनेक होनेकी लालसा नहीं की तबतक वह निराकार रूपमें थे—निराकार रूपमें सृष्टि नहीं होसकती। सृष्टिरचनाके पूर्व वह जिस साकार रूपमें आये वह सूर्यमण्डलस्थ तेजोमय स्वरूपही है।

हम जिसके दर्शन करते हैं वास्तवमें वह सूर्यमण्डल है जो सूर्य-नारायणके तेजसे स्वयम् प्रभा सम्पूर्ण रहते हुए जगतको जीवन, प्रकाश और सामर्थ्य शक्ति देता है।

इस प्रथम संस्करणमें हम भूमिकाको विशद न बनायेंगे; समय आयेगा तो द्वितीय संस्करणमें वेदोपनिषदादि और विज्ञान-वेत्ताओंकी मानी हुई बातोंकी विस्तारसे चर्चा करेंगे। आशा है श्री साम्बपुराण और प्रश्नोपनिषद्का पाठ करते रहनवाले इस तत्वको सहजही हृदयङ्गम करलेंगे कि सूर्योपासनाका क्या महत्व हैं और हिन्दू धर्ममें उसका कितना ऊंचा स्थान है।

निरंजन शर्मा आजित

विषय सूची

ॐ नमो भगवते भास्कराय ॐ

भास्वद्रत्नाढ्यमौलि स्फुर दधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो।
भास्वान्यो दिव्यतेजा करकमलयुत स्वर्णवर्ण प्रभाभि ॥
विश्वाकाशावकाश ग्रहपति शिखर भाति यश्चोदयाद्रौ।
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमित पातु मा विश्वचक्षु ॥

श्री साम्ब पुराण

ॐसिद्धगणेशायनमः

मङ्गलाचरण

नमः सवित्रे जगदेक चक्षुषे—
जगत्प्रसूति स्थिति नाश हेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे ।
विरिञ्चि नारायण शंकरात्मने ॥१॥

समस्तप्राण देहाय सदा विशुद्ध बुद्धये ।
त्रयीमयाय देवाय नमो लोकैक साक्षिणे ॥२॥

पितामहाय कृष्णाय योगिनेव्यक्तरूपिणे ।
भूत भव्य भविष्याय विश्वसंसृष्टये नमः ॥३॥

नमस्तस्मै मुनीशाय सव्रताय तपस्विने ।
शान्ताय वीतरागाय तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥

नमस्तस्मै विधात्रेच स्वव्यक्तप्रभवायच ।
भूतसंहार तिग्माय भास्कराय गभस्तिने ॥५॥

शक्रो वन्हिर्यमो रक्षो वरुणोऽथ समीरणः ।
धनदश्चेश्वरश्चैव अधऊर्ध्व तथैव च ॥
यो दिशो व्याप्य तिष्ठन्ति तस्मै सर्वात्मने नमः ॥६॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(१) उद्देशानुक्रमणिका

पूर्वकालमें, शौनकने नैमिषारण्य नामक तपोवनम स्थित सूतसे पूछा था कि हे महाभाग, आपने यहां पुराणोंकी कथाएं विस्तारसे सुनायी हैं। स्कन्दपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वायुपुराण, आदिकी कथा आप सुना चुके। सावर्णिने, मार्कण्डेयने, वैशम्पायनने, दधीचिने और शर्वने जो कथाएं कही हैं वे सब हम आपसे सुन चुके हैं। इसी तरह श्रीहरिद्वारा ऋषियोंके सामने कथित कथा और वालखिल्य ऋषियों द्वारा कही गयी कथा भी आपने हमको सुना दी है। पर अबतक आपने हरिपुत्र साम्बकी कथा नहीं सुनायी। मेरे कान मौन भावसे प्रीतियुक्त इस कथामृतको पान करना चाहते हैं। जो भास्करपुराण है, और जिसको पूर्वकालमें साम्बने पूछा था उसी द्वादशमूर्तिमय भगवान सूर्यकी कथा आप सुनाइये। इस सर्वशास्त्रप्रतिष्ठित भास्करपुराणकी समस्त कथाको आप यथावत सुनानेकी कृपा कीजिये।

शौनकका प्रस्ताव सुनकर सूतने कहा—हे सुव्रत, आप ठीकही कहते हैं। यह महान प्रश्न है। महाभारतमें, वेदोपनिषदोंमें और सब पुराणोंमें इस विषयमें बहुत कुछ कहा गया है। इसमें पुराण-प्रतिष्ठित बहुविध कथाओंका भी समावेश हो जाता है। वेदार्थ,

स्मृतिसार, वर्णधर्म, आश्रमाचार, भूत, भविष्य, वर्तमान, मंत्रवाद, सृष्टि, उत्पत्ति, प्रलय, पूजाविधान, सांगोपांग समारोह विधि, पूजा-प्रवर्तन, वशीकरण, आकर्षण, विद्वेष, स्तम्भन, उच्चाटन आदिका भी इस पुराणकी कथामें समावेश होता है। सूर्यप्रतिमाका लक्षण, प्रतिमापूजा, वासविधान, मण्डलनिर्माण, यज्ञोंकी क्रिया, सिद्धि देनेवाले यज्ञ, साधन, महामण्डल, सूर्यसान्निध्य, भूमि, वात, उष्णता, पुष्पधूपदान आदिकी विधिका वर्णन इस पुराणमें है। सप्तमीकल्प तथा उपवास विधि, दानधर्म और उसका फल, वेलाकालका विधान, धर्मकी विधि, धूपदानकी विधि, जयजयकार विधि, प्रयताप्रयत, स्वप्नानुवर्णन, प्रायश्चित्त विधान, मूर्तिके लक्षण, शिष्योंको दीक्षा देनेकी विधि, मंत्रका निर्णय और यथा न्याय विविध स्तवनस्तोत्र आदिका भी इसमें समावेश होता है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे उद्देशानुक्रमणिका
कथनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

ॐ सिद्धगणेशाय नमः

(२) आदित्यका सर्वेश्वरत्व

सूतने शौनक ऋषिसे कहा कि हे महाभाग, पूर्वकालमें, एक बार, रघुवंशोद्भव राजर्षि बृहद्बलने कुलगुरु वसिष्ठसे परम निःश्रेयसकी बात पूछी थी। राजाने कहा था कि गुरुदेव, मैं उस परब्रह्म सनातनका ज्ञान प्राप्त किया चाहता हूं जिसको जाननेके पश्चात् ज्ञानीजन मोक्ष प्राप्त करके जन्ममरणके चक्रसे बाहर निकल जाते हैं। मोक्ष चाहनेवाला चाहे गृहस्थ हो, चाहे ब्रह्मचारी हो, चाहे वानप्रस्थ हो अथवा भिक्षुक और सन्यासी हो, क्या कोई ऐसा देवता है जिसकी पूजा अर्चना करके सब मोक्षपथके पथिक बन सकते हैं। आप परम निःश्रेयस और स्वर्गप्राप्तिका ध्रुव निश्चित मार्ग बताइये। फिर हमें ऐसे स्वर्गको लेकरभी क्या करना है जहांसे पुनः संसारमें आनाजाना पड़े। आप तो यह बताइये कि—

> देवतानांहिको देव पितृणामपि क पिता।
> यस्मात्परतरंनास्ति तन्मेब्रूहि महामुने॥

देवताओंकाभी देवता कौन है, पितरोंकाभी पिता कौन है? आप तो मुझे उसको बताइये जिससे ऊंचा और कोई भी न हो। महामुने, यह स्थावर-जङ्गम जगत किससे पैदा होता है और किसमें विलीन हो जाता है? आप मुझे उसी देवताओंके देवताका ज्ञान कराइये। आप परम ज्ञानी हैं, और समर्थ हैं।

वसिष्ठ ऋषिने, वृहद्बलका प्रश्न सुनकर कहा कि—

उद्यन्पदयन्हि कुरुते जगद्वितिमिरंकरैः।
नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो नराधिपः॥

अनादि निधनोह्येप पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः।
तापयत्येप लोकांस्त्रीन् भ्रमन् रश्मिभिरुल्वणैः।

सर्व देवात्मको ह्येप तपसांचानुभावनः।
सर्वस्य जगतोनाथः कर्मसाक्षी विभावसुः॥

हे राजा बृहद्बल, यह जो उदय होते होते जगतको अन्धकार रहित बना देनेवाला सूर्य है, यही वह परब्रह्म है। इससे परतर कोई भी अन्य देव नहीं है। यही अनादि है, यही निधन विहीन भी है। यही शाश्वत और अव्यय महापुरुष है। अपने विभिन्न वर्णोंकी किरणोंसे यही तीनों लोकोंको तपाता है और प्रकाशित करता है। यह तपस्वियोंका प्यारा सूर्यही सर्व देवात्मा है, यही जगतका नाथ है और यही कर्मसाक्षी है। जड़जङ्गम सब इससेही उत्पन्न होते हैं और अन्तमें इसीमें विलीन हो जाते हैं। यही प्रभु एकमात्र वह शक्ति है जो संसारमें भी प्रकाशमान है और सब सृष्टिको अपनी आकर्षण शक्तिसे रक्षित करके थामे हुए है। यही धाता है, यही विधाता है, यही अग्रजन्मा है, यही भूतभावन है। यही ब्रह्मा है, यही विष्णु है, यही महेश है। यह नित्य अक्षयमण्डलमें स्थित है, इसका कभी क्षय नहीं होता है, यही पितरोंका पिता है, यही देवताओंका देवता है। इसीकी आराधनासे वह मोक्ष प्राप्त होता है जहांसे पुनरागमन नहीं होता है। आरम्भमें आदित्यसे ही जगत पैदा

होता है, प्रलयके समय इसी दीप्तमान तेजोराशि जगत्पतिमें सब कुछ विलीन हो जाता है। योगिजन अन्तमें अपने पुरातन शरीरोंको तजकर, संशुद्धात्मा होनेपर, इसी तेजोराशिकी किरणोंमें इस प्रकारसे आश्रयीभूत हो जाते हैं जिस प्रकारसे बड़े वृक्षकी शाखाओंपर पक्षिगण बसेरा किया करते हैं। योगिजन, सिद्धजन, ऋषिमुनिगण और देवगण इसीकी रश्मियोंमें विश्राम पाते हैं। जनक राजाके सदृश गृहस्थजन, राजयोगके अभ्यासी नृपतिगण, वालखिल्य आदि बालब्रह्मचारी ऋषिगण, वानप्रस्थी वर्णधर्मी, सन्यासी-भिक्षुक, पंचशिखाधारी—ये सबही योगका आश्रय लेकर आदित्यमण्डलकी किरणोंमें प्रवेश पाते हैं। भगवान वेदव्यासजीके सुपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराज आदि योगधर्मके पूरे महात्मा भी सूर्य-किरणोंसे अमरत्व पान करते हुए अमर बने हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवगणोंके नाम श्रुतियोंके लिये ही हैं। किन्तु यह *अन्धकारका नाश करनेवाला सूर्यदेवता सबके सामने विद्यमान भी है।* अतः अपना भला चाहनेवालोंको अन्य देवताओंकी भक्ति न रख कर आदित्यकी ही भक्ति करनी चाहिये। दर्शनमात्रसे ही यह सूर्यदेव नित्य अदृष्टोंका नाश करता है। और तुम तो ऐसे हो जिन्होंने इस जगतके गुरुदेव आदित्यभगवानकी आराधना, माता पितासहित, सदा ही की है।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे आदित्यस्य
सर्वेश्वरत्ववर्णनोनाम द्वितीयोऽध्यायः।

ॐसिद्धगणेशायनमः

(३) सांबको शाप

गुरुदेव वसिष्ठसे आदित्य भगवानके सर्वेश्वर होनेकी बात सुनकर राजा बृहद्‌बलने पूछा कि महाराज, कहां किस द्वीपमें आदित्यको आद्यस्थान प्राप्त है। वे किस द्वीपमें विधि विधानसे की गयी पूजाको स्वयम् स्वीकार करते हैं? वसिष्ठ बोले, चंद्रभागा नदीके सुरम्य किनारेपर जो सांबनगर बसा हुआ है वही इस भूलोकमें शाश्वत स्थान है। वहीं आदित्य भगवान नित्य विराजते हैं। वहीं भगवान, सांबकी प्रीतिके वश होकर, संसारके हितके लिये रहते और दर्शन देते हैं। वहीं सब भक्तोंपर वे स्वयम् अनुग्रह करते हैं। वहीं वे विधि विधानसे की गयी पूजाको सबके सामने स्वयम् ग्रहण करते हैं।

बृहद्‌बल पूछने लगे—महाराज, यह सांब कौन है? किसके पुत्र हैं जो सूर्यभगवानके इतने प्यारे हैं।

वसिष्ठ ऋषिने कहा कि अदितिके १२ पुत्र हुए थे। यही द्वादश आदित्य कहलाये। इनमें १०वें पुत्रका नाम विष्णु है। यह दशम आदित्य ही द्वापरके अन्तमें वसुदेवके घर अवतार लेकर वासुदेव कहाये हैं। इन वासुदेव कृष्णके सुपुत्र सांब थे। पिताके भारी शापसे उनके शरीरमें कोढ होगया था। उन्होंने

चन्द्रभागा नदीके किनारे मित्रवनमें सूर्यमन्दिरकी स्थापना की थी और उन्होंने वहां अपने नामके अनुसार सांबपुर नामक नगर बसाया था।

बृहद्‌बल—महाराज पिताने अपने पुत्रको ही किसलिये शाप दे दिया था, कोई न कोई बहुत भारी कारण अवश्य रहा होगा?

वसिष्ठ—अच्छा राजा बृहद्‌बल, लो उनके शापका कारण भी सुनो। ब्रह्माजीके नारदनामक जो मानसपुत्र हैं, वे ब्रह्मलोकमें, विष्णुलोकमें, और सूर्यलोकादिमें सदा अबाधरूपसे विचरते रहते हैं। पितृलोकमें तथा राक्षस, नाग, यम, वरुण, इन्द्र आदिकी नगरियोंमें नारदमुनिके लिये कोई रोकटोक नहीं है। पृथिवीमें और पातालमें कहीं किसी स्थलपर भी किसीके घरमें भी उनका आना-जाना अप्रतिहतिगतिसे होता है। एक बार किसी जगह विचरते देखकर भगवान कृष्ण उनको द्वारकापुरीमें साथ ले आये। अन्यान्य ऋषियोंके साथ मुनि सत्तम नारदजी जब द्वारकामें आये तो प्रद्युम्न प्रभृति सभी यदुकुलके राजकुमारगण उनकी सेवामें तत्पर रहने लगे। वे सब यत्नपूर्वक अभिवादन करते थे, अर्घ्य देते थे, पैर धोते थे और पूजा करते थे। पर राजकुमार साँब भावी शापके वशमें मोहित हुए नित्यही महामुनि नारदकी अवज्ञा करते रहते थे। वे सदा अपने रूपके और अपनी जवानीके घमण्डमें खिलवाड़ करते फिरते थे। श्रीकृष्णके सुपुत्र सांबको इतना अविनीत देखा तो नारदजीने विचार किया कि मैं उस दुर्विनीत सांबको ऐसी शिक्षा दूंगा कि यह भी भला और विनीत बन जायगा।

यह विचार कर नारदजीने भगवान कृष्णसे कहा कि महाराज आपके राजमहलोंमें १६००० रानियां हैं। पर ये सब सांबके रूप-यौवनसे विचलित हैं। सबके मनोंको सांबके रूप—यौवनने आकृष्ट किया हुआ है। बातभी कुछ ऐसी है कि सांबने जो रूप और यौवन पाया है वह इस संसारमें अप्रतिम है। इसी लिये आपकी रानियांतक सांबके दर्शनोंकी प्यासी रहती हैं।

देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर, बिना विचारे ही, होनहारके वशमें होकर, श्रीकृष्ण भगवानने कहा कि आपकी बातपर मेरा विश्वास नहीं जमता। नारदजीने प्रत्युत्तरमें कहा कि तो फिर मैं वह बात कर दिखाऊंगा जिससे आपपर मेरे वचनकी सत्यता सिद्ध हो जाय। इस कथनके पश्चात् शीघ्रही नारदजी उस समय तो द्वारकासे विदा हो गये। पर कुछ कालोपरान्त पुनः द्वारकापुरीमें आ-विराजे। उस दिन श्रीकृष्ण भगवान सुरम्य रैवतक पर्वतपर स्थित उद्यानके महलोंमें रानियोंके साथ क्रीडा कर रहे थे। उस उद्यानमें सदा सब भांतिके पुष्प खिले रहते थे। वहां नित्य मोर नाचते रहते थे, नित्य कोकिलाएं गाती रहती थीं। वह स्थान चक्रनाकोंसे सुशोभित रहता था। कोयलोंके मधुर आलाप, जलकुक्कुटोंके निनाद, भौरोंके सुमधुर गीत और चातकों तथा तोतोंकी मीठी तानें—यह सब वहां गूंजते रहते थे। उद्यानमें जो सरोवर था वह भी भांति भांतिके जलजपुष्पोंसे शोभित रहता था। साथ ही उसमें हंस, सारस क्रीडा करते हुए बोलते रहते थे। उस दिन जब देवर्षि नारद द्वारकामें पुनः पधारे तो श्रीकृष्ण भगवान रैवतक पर्वतके उद्यानस्थ

राजप्रसादोंकी सरोवरमें रानीमहारानियोंके झुरमटमें क्रीडा कर रहे थे। रानीमहारानियां हार, नूपुर, केयूर, रसना आदि अलङ्कार धारण किये हुए थीं। उनमें अनेक चार्वाङ्गी स्त्रियोंने क्रीडार्थ वस्त्र उतारकर पद्मपत्रोंसे शरीरको ढका हुआ था। उन्हें क्रीडार्थ, वहां मधुर सुरासव भी पिलाया गया था। वह सुवासित सुरासव मणि-कांचनके पात्रोंमें रानी महारानियोंको दिया जारहा था। इस स्थितिमें स्त्रियोंको जब नारदजीने नशेमें बेबस हुआ समझ लिया, तो देवर्षि नारद थोडे गंभीर होकर, दूरकी ध्वनि सुननेका बहाना करते हुए, सांबसे बोले, सांब यहां इसतरह मत खडे रहो। रैवतक पर्वतपर जाओ न, महाराज आपको पुकार रहे हैं। देवर्षिकी बात सुनतेही, भाविवश, सांब तुरन्तही वहां दौड गये। भगवानके निकट पहुंचकर सांबने उन्हें प्रणाम किया। इसी समय वहां उप-स्थित सब स्त्रियोंकी दृष्टि इस अतुल रूप—यौवन—सम्पन्न युवकपर पड़ी। कामदेवके समान ऐसा सुन्दर युवक पहले तो उन्होंने कभी वहां देखाभी न था। कुछ मद्य दोषके कारण, कुछ स्मृतिलोप होनेके कारण अल्प सत्ववाली रानियां विचलित सी हो उठीं। इस विषयमें एक श्लोक प्रसिद्ध भी है कि ब्रह्मचर्य व्रतधारिणी साध्वी स्त्रियां भी सुन्दर पुरुषको देखकर विचलित हो जाती हैं। यह भी कहा गया है कि मद्यके अति सेवनसे सत्कुलोत्पन्न नारियां भी लज्जा खो बैठती हैं। मांस युक्त भोजनसे और मधुर आसवके प्रभावसे मोहक सुगंधियोंसे और सुंदर वस्त्रोंसे कामदेव स्त्रियोंपर भारी

प्रभाव डालता है। इन बातोंको जानकर सत्कुलोत्पन्न स्त्रियोंको, अपना भला चाहनेवाले, कदापि मद्य न पिलायें।

इतना कहकर वसिष्ठजी बोले कि हे राजा, सांबको भीतर भेज कर उनके पीछे ही नारदजी भी वहां पहुंच गये। इस प्रकारसे अचानक देवर्षिको वहां देखा तो सब मदविव्हला स्त्रियां उसी दशामें आदर प्रदर्शनार्थ खड़ी होगयीं। इस दशामें रानी महारानियोंको खड़ा देखकर भगवान कुपित होगये। उन्होंने स्त्रियोंको शाप दिया—

"हे रानियों, तुमने होश खोकर अन्य पुरुषपर मेरे सामने मन लगाया है, अतः तुमको पतिलोक नहीं मिलेगा। पतिलोकसे पतित तुम स्त्रियोंको स्वर्गमें जगह न मिलेगी। एक दिन तुम शरणरहित होकर डाकुओंके हाथोंमें पड़ोगी।"

अन्ततः, शापके कारण, इन रानी महारानियोंको स्वर्गकी प्राप्ति न हो पायी और पंचनद प्रदेशमें इनको अशरण अवस्थामें दस्यूगण अर्जुनसे छीन लेगये। रुक्मिणी, सत्यभामा और जाँबवती यह तीन पटरानियांही शापसे मुक्त रही थीं। हे राजा बृहद्बल, रानीमहारानियोंको इतना भारी शाप देचुकनेपर भगवानने सांबको भी शाप देदिया। उन्होंने कहा—

"तेरे परम सौंदर्यको देखकर ही तो इन सब स्त्रियोंका मन विचलित हुआ है, अतः जा तेरा यह सौंदर्य कुष्टरोगसे पीड़ित होगा।"

वसिष्ठ ऋषि आगेका प्रसंग सुनाते हुए कहने लगे कि पिताके इस शापके कारण कुछ कालोपरान्त ही सांबको कुष्टरोगने ग्रसित कर लिया। इसीतरह एक बार दुर्वासाने भी सांबको शाप दिया था। एक बार दुर्वासा ऋषिने फिर यह शाप दिया था कि जब तूने स्त्रीका रूप धरकर, कपड़े बांधकर गर्भका बहाना किया है और यह पूछा है कि मेरे पुत्र होगा या कन्या, तो जा तेरे इस बनावटी गर्भसे लोहेका मूसल पैदा होगा जो समस्त यादवोंका नाश कर देगा। इसके प्रभावसे लोहेका मूसल निकला था और उसनेही यदुकुलका नाश कर दिया था।

सांबका शरीर जब कुष्टसे विगलित होने लगा तो विनीत-भावसे ब्राह्मणोंसे तथा गुरुदेव नारदसे पूछकर उन्होंने भगवान भास्करका आराधन किया था। भगवानको प्रसन्न करके उन्होंने पुनः अपना पूर्व सौंदर्यसम्पन्न शरीर प्राप्त कर लिया था। तपस्याके स्थानपर उन्होंने अपने नामसे पुर भी बसाया था और सूर्यमन्दिर भी स्थापित किया था।

देवर्षि नारद भी स्त्रियोंका भावविपर्य दिखाकर और सांबको शाप दिलवाकर अविलम्ब द्वारकासे विदा होगये।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे सांबशापनाम
तृतीयोऽध्यायः।

ॐसिद्धगणेशायनमः

(४) सूर्यकी द्वादश मूर्तियां

राजा बृहद्वलने, वशिष्ठमहाराजसे प्रश्न किया कि गुरुदेव यदि चन्द्रभागा नदीके किनारेपर सांबनेही सूर्यमन्दिरकी स्थापना की थी तब तो जैसा आपने कहा था वैसा नहीं माना जासकता ; इसको आद्य स्थान नहीं कह सकते।

वसिष्ठजी बोले—राजा यह स्थान तो सृष्टिके प्रारम्भसेही सूर्यका आदिस्थान ही था। पीछेसे सांबने वहां तपस्या करके इसका पुनरुद्धार किया था। मैं इस स्थानका आद्यत्व, विस्तारसे तुझे सुनाता हूं। विश्वमाली जगत्पति भगवान सूर्यदेव तो अनादि ही हैं। उन्होंने मित्रनामसे, पुराकालमें, इस वनमें तप किया था। वह अनादि हैं और अनन्त हैं। वह नित्य हैं और अक्षर ब्रह्म हैं। उन्होंने पहले सब प्रजापतियोंको सृजा; उन्होंने विविध प्रजाकी रचना की। फिर उसी अव्यक्त पुरुष सहस्रांशुने अपनेको १२ स्वरूपोंमें विभाजित किया और आदित्य नाम धराया। सूर्यके इन बारह स्वरूपों या बारह आदित्योंके नाम ये हैं:—

इन्द्रोधाताथ पर्जन्यः पूषात्वष्टार्यमाभगः।
विवस्वान् विष्णुरंशुश्च वरुणो मित्र एवच॥

१ इन्द्र, २ धाता, ३ पर्जन्य, ४ पूषा, ५ त्वष्टा, ६ अर्यमा, ७भग, ८विवस्वान, ९विष्णु, १०अंशु, ११वरुण और १२मित्र।

उस परमात्मा सूर्यने १२ स्वरूप लेकर इस सारे जगतको व्याप्त कर लिया। परमात्माकी पहली मूर्ति इन्द्र नामसे है। वह देवराजके रूपमें देवलोकका शासन करती है।

परमात्माकी दूसरी मूर्ति धाता नामसे प्रकीर्तित है। यह प्रजापतिके आसनपर विराजमान होकर विविध प्रजाकी रचना करती है।

परमात्माकी तीसरी मूर्तिका नाम पर्जन्य है। इस रूपमें आदित्य देव मेघोंकी सुव्यवस्था रखते हैं।

परमात्माकी चौथी मूर्ति पूषा नामसे पुकारी जाती है। इस स्वरूपमें सूर्य भगवान अन्नकी सुव्यवस्था करते हुए प्रजाका नित्य पालन करते हैं।

परमात्माकी पाचवी मूर्ति त्वष्टा नामसे पुकारी जाती है। इस रूपमें सूर्य भगवान वनस्पतियोंमें रहकर ओषधियोंको जीवन-शक्ति प्रदान करते हैं।

परमात्माकी छटी मूर्ति अर्यमा कहलाती है। इस रूपमें भगवान सबकी देहोंमें रहकर प्राणवायुओंका नियंत्रण करते हैं।

परमात्माकी सातवीं मूर्तिका नाम भग है। इस रूपमें भगवान भूमिकी व्यवस्था करते हैं और शरीरोंको रक्षा-पालन-पोषण देते हैं।

परमात्माकी जो अष्टमी मूर्ति है उसे विवस्वान नामसे पुकारा जाता है। इस रूपमें परमात्मा बाह्य और आन्तरिक अग्नियोंका नियंत्रण करते हैं; अग्निदेव हैं।

परमात्माकी नवमी मूर्ति विष्णु नामसे विख्यात है। इस रूपमें भगवान देवताओं और गो-ब्राह्मणके हितके लिये राक्षसोंका नाश करनेको भूतलपर अवतार लेते रहते हैं।

परमात्माकी दशमी मूर्तिको अंशुमान पुकारा जाता है। वह वायुमें प्रतिष्ठित रहती हुई प्रजाको सुख देती है।

परमात्माकी ग्यारहवीं मूर्ति वरुण संज्ञक है। वह जगतके हितके लिये जलमें रहकर जीवन दान करती है। इस रूपमें भगवानका निवास समुद्रमें है। इसी कारण समुद्रको वरुणालयभी पुकारा जाता है।

परमात्माकी बारहवी मूर्तिका नाम मित्र है। इस रूपमें जगत के हितके लिये भगवान चन्द्रभागा नदीके तटपर विराजते हैं। इस स्थानपर केवल वायुभक्षणपूर्वक परमात्माने तप किया था। अतः यहां जपतप पूजा करनेवालोंको अनुग्रहपूर्वक दर्शन देते हुए भगवान नाना वरदान प्रदान करते हैं। इस प्रकारसे यह मित्रवनका स्थानतो सृष्टिके आदिसे ही है, किन्तु सांबने इसका फिरसे उद्धार किया है। इसी लिये इसकी ख्याति सांबके नामसे होगयी है। वहां मित्र (सूर्य भगवान) प्रकट होकर रहते हैं, इस लिये इस स्थलका नाम मित्रवन है। इस रीतिसे परमात्माने द्वादशमूर्ति धारण करके जगतको व्याप्त किया है। जो जन द्वादश आदित्योंको जानकर जगतको पहचानेंगे, जो इनको नित्य सुनेंगे या पढेंगे, वे सूर्यलोकमें जायंगे।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे द्वादश मूर्ति उपाख्यानोनाम चतुर्थोऽध्यायः।

ॐसिद्धगणेशायनम

(५) आदित्यज्ञान

राजा बृहद्बलने पूछा कि गुरुदेव वसिष्ठजी महाराज यह बताइये कि जब सूर्यभगवान स्वयम् परब्रह्मही हैं तो फिर उन्होंने साधारणजनोंकी भांति तपस्या क्यों की ?

वसिष्ठ ऋषिने शंकाका समाधान करते हुए कहा कि यह परम रहस्यकी बात मैं तुझे बताता हूं। इस रहस्यको बहुत पूर्व-कालमें स्वयम् भगवानने देवर्षि नारदको बताया था।

मैंने पहलेही परमात्माकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन तुझसे किया है। इनमें मित्र और वरुण नामसे दोनों स्वरूपोंमें भगवानने तप किया है। पश्चिम महासमुद्रमें स्थित होकर केवल जल पीते हुए वरुणने तपस्या की है, और केवल वायुभक्षण करते हुए चन्द्र-भागाके तटपर मित्रवनमें मित्रने तपस्या की है। एकबार सुमेरु पर्वतके शृंगसे, गन्धमादन होते हुए सब लोकोंकी सैर करते हुए देवर्षि नारदजी वहा आ निकले जहा भगवान मित्र रूपमें तपस्या कर रहे थे। इस तरह तप करते हुए देखकर देवर्षि नारद को परम कौतूहल हुआ।

" जो अक्षय है, जो अव्यय है, जो अव्यक्ताव्यक्त है,
जो सनातन है, जिस एकमात्रने तीनों लोकोंको धारण
किया हुआ है, जो सब-देवताओंका पिता है, जो स्वयं

परब्रह्म है, वह यहां किस देवताकी आराधना कर रहा है ? किस पितरको मना रहा है ?"

इस प्रकार विचार करते हुए देवर्षि नारदने स्वयम् मित्रसे कहा- "महाराज, वेदोंमें और पुराणोंमें सांगोपांग रूपसे यही गाया गया है कि आप अज हैं, शाश्वत हैं, धाता हैं, महाभूत हैं, भूत–भविष्यत्–वर्तमान आपमेंही निवास करते हैं। चारों आश्रयोंमें स्थित सबजन आपकी ही आराधना करते हैं, क्योंकि हरिहरादिके अनेक रूपोंमें आपही अवस्थित हैं। आपही तो सबके माता-पिता हैं। फिर दयानिधे, आप किस देवकी आराधना करने लगे हैं, यह मेरी समझमें नहीं आरहा है।"

भगवान मित्रने नारद्जीको उत्तर दिया कि हे देवर्षि यह परमगोपनीय सनातन रहस्य मैं तुम्हें बताता हूं क्योंकि तुम मेरे परमभक्त हो। मेरा जो वह मूलरूप है जो अति सूक्ष्म है, अज्ञेय है, अव्यक्त है, अचल है, ध्रुव है, जो इन्द्रियों और इन्द्रियोंके अर्थों द्वारा समस्त प्राणियोंको नहीं मिल सकता, वह प्राणियोंके अन्तरात्माके रूपमें विद्यमान है और क्षेत्रज्ञ भी कहलाता है। वह त्रिगुणातीत है। हिरण्यगर्भके रूपमें वही बुद्धि रूपमें है। उसीने तीनों लोकोंको धारण किया हुआ है, वह शरीर रहित है, पर सबके शरीरोंमें निवास करता है। और शरीरोंमें रहता हुआ भी वह कर्मोंमें लिप्त नहीं होता। मेरे, तुम्हारे, सबके हृदयोंमें वह सूक्ष्मरूपमें विराजमान है। सबका साक्षीभूत है, तो भी उसको

कोई नहीं पासकता है। उसको सगुण भी कहा गया है, निर्गुण भी कहा गया है। वह केवल ज्ञानसेही जाना जासकता है। वह हाथ, पैर, आख, शिर, मुख, कान आदि रहित होकर भी सबका आश्रयभूत होकर रहता है। वही सब इन्द्रियोंकी शक्ति है। वही एक दीपक है जिसमे सहस्रसहस्र दीपकोंकी ज्योति जागती है। प्रवृतिकालमें वह बहुत रूपोंमें हो जाता है। निवृतिके समय वही रह जाता है और सब उसमे लय होजाते हैं। उस महाप्राणके बिना ससारमें स्थावर जंगम कोईभी वस्तु क्षणभर नहीं रह सकती। उसीको अक्षय, अमेय और सर्वगति कहा जाता है। उस अव्यक्तसे ही त्रिगुणकी उत्पत्ति है। अव्यक्त-व्यक्त भावमें स्थितको प्रकृति कहते हैं। हे देवर्षि, उस परब्रह्मको तुम यही जानो कि मैं स्वयही हू। लोकमें वही पूजा जाता है। देवता और पितरोंके कार्योंमें उसीकी पूजा होती है। उसके परे कोई और नहीं है। वह मेरी आत्माही है, इसलिये मैं उसकी आराधना करता हू। स्वर्गमें रहनेवाले भी उसको नहीं जान पाते हैं। जिसकी कृपासे अपने शुभकर्मोंके फलके रूपमें उन्हें स्वर्ग मिला है उसका हाल वे नहीं जानते। उसको, नानाप्रकारसे, नाना स्वरूपों मे देवगण और मनुष्यादि पूजते और भजते हैं, वही सबको आद्य-गति देता है। वह स्वयम् सर्वगति भी है और निर्गुण भी है। यह सब जानकर ही मैं अपने आपको (जो सनातन हू) पूजता हू। जो कुछ दिखायी देता है वह सब उस एकसेही पैदा हुआ, और उस एकमेंही लीन हो जायगा। यह परम गोपनीय ज्ञान

मैंने तुम्हें इसलिये दिया है कि तुम मेरा भक्त है। देवता हो, ऋषिमुनि हो, सबही परमात्मा दिवाकरकोही ध्याते हैं। यह आर्षेय ज्ञान मैंने तुम्हें दे दिया है। पर किसी अनादित्य—भक्तको यह ज्ञान कदापि मत देना। जो मनुष्य इस ज्ञानको नित्य सुनाता है या नित्य सुनता है वह निश्चयही सूर्यलोकमें जाता है। इस कथाको सुननेवाले दुःख दारिद्र्यसे और रोगोंसे छूट जाते हैं। जिज्ञासु-जन ज्ञान पाते हैं और अभीष्ट पद प्राप्त करते हैं। यात्राके पूर्व पढनेवालेकी यात्रा सकुशल होजाती है और जो—जो कामनाएँ करता है वह सब पूर्ण होती हैं।

स्वयं सूर्य भगवानका नारदको दिया हुआ यह दुर्लभ ज्ञान बृहद्नलको देते हुए ऋषिराज वसिष्ठजी बोले कि यह ज्ञान मुझे देवर्षि नारदसे मिला है। हे राजा मैंनेभी यह ज्ञान तुझे इसी लिये दिया है कि तू भी सूर्यका परमभक्त है। धाता विधाताके रूपमें तू भी तो भगवान आदित्यकी सदा अर्चना करता रहा है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे आदित्यज्ञान
नामक पंचमोऽध्याय ॥ ५ ॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(६) सूर्यलोक दर्शन

महाराज बृहद्बल पूछने लगे कि गुरुदेव, सांब किस प्रकार आदित्यकी शरणमें गये थे? उन्हें किसने उपदेश दिया था? पितासे उग्र शाप पाकर सांबने किस प्रकार छुटकारा पाया था?

वसिष्ठ ऋषिने कहा कि जब भगवान कृष्णने सांबको शाप दे दिया तो उसने पितासे कहा कि हे पिता, यह तो बताइये कि आपने मेरे किस अपराधपर इतना भारी शाप दे डाला है। आपकी आज्ञाकी बात सुनकर ही तो शीघ्रतापूर्वक मैं यहां आया था। अब यह तो कहिये कि इस शापसे मेरा पिण्ड कब और कैसे छूटेगा। पिताजी प्रसन्न हो जाइये, वास्तवमें मैंने कोई बुराई नहीं की है। प्रभो, कृपा करके शापका निवारण कीजिये। सांबकी प्रार्थनापर क्रोधमें भरे हुए श्रीकृष्ण भगवानने कहा कि अब तुम ये सब देवर्षि नारदसे ही पूछो। वही बतावेंगे किस देवताकी आराधनासे शापसे निवृत्ति होगी। इसपर जांबवतीतनय सांब शापके कारण विगलित शरीरको लिये हुए चिन्ता करते फिरे। एक बार सांबने फिर द्वारकामें देवर्षिको आते देखा। अवसर पाकर वे विनयपूर्वक देवर्षिकी सेवामें गये और पूछने लगे—

"कृपानिधान, आप ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। आप सर्वज्ञ हैं और सब लोकोंमें आप आतेजाते हैं। हे मुनीन्द्र, मुझ दीनपर

आप दया करें तो मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि सब देवताओंमें कौन अधिक वन्दनीय है ? कौन पर और अव्यय पुरुष है ? कौन देवता दीनोंका दुःख दूर करनेवाला है ? मैं किसकी शरणमें जाऊं ? हे महामुनि, पिताके शापके अनर्थसे मुझे कौन बचायेगा ? मे दुःखी किसका आश्रय लूं ?"

यह पूछनेपर देवर्षि नारदने सांबसे कहा कि एकबार पर्यटन करताकरता मैं सूर्यलोक जा निकला था। वहां मैंने देखा कि सूर्यभगवान सबगणोंके बीचमें विराज रहे हैं। मैंने देखा कि गन्धर्व, अप्सराएं, नाग, यक्ष और राक्षस सब सेवामें उपस्थित हैं। वहां गन्धर्वगण गा-गाकर सूर्यभगवानको मना रहे थे। वहां अप्सराएं नृत्य करके उनको प्रसन्न कर रही थीं। यक्ष, राक्षस और नाग रक्षकोंके रूपमें उद्यत थे। मैंने वहां देखा कि ऋग्-यजु-साम वेदकी ऋचाएं मूर्तिमती होकर विद्यमान हैं। वहांपर ऋषिगण वेदोंकी स्तुतियां गा-गाकर विविध रीतिसे भगवान सूर्यको मना रहे थे। तीनों सन्ध्याएं मूर्तिमती होकर वहां उपस्थित थीं। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत और अश्विनीकुमार आदि सब देवता वज्र, नाराच इत्यादि लिये भगवान सूर्यकी परिचर्यामें संलग्न थे। तीनों सन्ध्याएं पहले पूजन करती थीं, फिर देवगण पूजा करते थे। ईश्वर और जय शब्दकी ध्वनि हो रही थी। इन्द्र देव भी वहां थे। ब्रह्मा, विष्णु और महेश शुभाशीषें दे रहे थे। सूर्यभगवानके रथवानको भी मैंने देखा जिसका नाम अरुण है। उनके रथमें वेदोंके सातछन्दस्वरूप सात

घोड़े जुतते हैं। भगवानकी दो भार्याएं हैं। जिनके नाम राज्ञी और निक्षुभा हैं। दोनों भगवानके पास ही विराज रही थीं। वहीं मैंने अन्य देवताओंके साथ पिंगल देवक और दण्डनायकको भी देखा। कल्माप पक्षियोंको तथा, मेरुके समान व्योमचतु-श्रृंगको मैंने देखा। नग्न दिण्डी भी थे और उनके साथ अन्य देवगण भी थे। इस प्रकारसे जो सर्वगति है, नित्य प्रदीप्त है और जगतका कल्याण करनेवाला है, हे सांब, तुम उन्हीं सर्वदेव नमस्कृत सूर्यभगवानकी शरणमें जाओ।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे सूर्यलोक
दर्शन-नामक षष्ठोऽध्याय ॥ ६ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(७) सूर्यका सर्वव्यापकत्व

नारदजीसे, सूर्यलोकमें विराजे हुए, देव, ऋषि, मुनि, ऋचा प्रभृतिके बीचमें विराजमान और ब्रह्मा-विष्णु-महेशादिसे सुपूजित सूर्यभगवानके दर्शनोंकी वार्ता सुनकर राजकुमार सांबने पूछा—"महाराज यह सवतो आपने मुझे बता दिया है, पर मैं यह बात सुनना चाहता हूं कि सूर्यभगवान तत्वतः किस प्रकारसे सर्वगति हैं? उनकी कितनी रश्मियां हैं? उनकी कितनी मूर्तियां हैं? राज्ञी और निक्षुभा कौन हैं? दण्डनायक और पिंगल कौन हैं और वे सदा क्या लिखते रहते हैं? कल्मापपक्षी कौन हैं? मेरु सदृश लक्षणयुक्त व्योम देवता कोन है? दिण्डि, नग्न और आसपासके देवगण कौन हैं? वेदशास्त्रानुसार तथा तत्वतः यह सब बातें आप सुनाइये।

नारद—सुनो यही बात मैं तुम्हें विस्तारसे पूरीपूरी सुनाता हूं। फिर अन्य देवताओंकी बात, विवस्वानको प्रणाम करके, सुनाऊंगा।

तत्त्वज्ञानी जन कहते है कि सूर्यभगवान अव्यक्त हैं, जगतके कारण हैं, नित्य हैं, सदसदात्मक हैं। वही प्रधानप्रकृति हैं। वह गंध, वर्ण और रसहीन हैं। शब्द ओर स्पर्शसे भी विवर्जित हैं। वह जगतके जनकजननी हैं और वही सनातन परब्रह्म हैं, वही सब प्राणियोंके शरीर हैं। वह स्वयम् अव्यक्त भी हैं और अजन्मा भी

हैं। वह अनादि, अनन्त, अज, सूक्ष्म और निगुणोंके भी जनक हैं। वह असाम्प्रत हैं, अज्ञेय हैं और परमपद हैं। उन्होंने आत्म-विकामपूर्वक इस जगतको व्याप्त कर रखा है। उनका स्वरूप ज्ञान-वैराग्य लक्षणयुक्त है। बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य संयुक्त है। वह अव्यक्त परब्रह्म जैसाजैसा संकल्प करते हैं वैसावैसा होता है। मनके विचारमात्रमें, ब्रह्माका ब्रह्मत्व और महाकालका कालत्व होता है। वही सहस्र शीर्षवाले पुरुष हैं। उन स्वयम्भुव प्रभुकी तीन अवस्थाएं हैं। सत्व और रजो गुणमय अवस्थामें वह ब्रह्मा हैं, और रज तथा तमो गुणमय रहते हुए महाकाल हैं। सतो गुणयुक्त अवस्था में वह स्वयम्भुव परब्रह्म हैं। ब्रह्माके रूपमें वह लोकोंकी रचना करते हैं। महाकाल रूपसे सबका नाश करते हैं। परमपुरुषके रूपमें सबका पालन करते हैं। उनकी यह तीन अवस्थाएं हैं। वही अपने आपको तीन भागोंमें विभाजित करके तीनों काल (भूत, भविष्यत, वर्तमान) को उत्पन्न करते हैं। पूर्वमें आपने हिरण्यगर्भ रूपमें अपना विस्तार किया था। आदि देव हैं इस लिये आदित्य कहलाये हैं, अजन्मा हैं इस लिये अज कहे गये हैं। सब देवोंमें आप महान हैं, इस लिये आपको ही वेद शास्त्रोंमें महादेव कहा गया है। आप सर्वमत्वधारी हैं और अवश्य हैं इस लिये आपको ईश्वर पुकारा जाता है। बृहत् होनेसे ब्रह्मा हैं। भूत होनेसे भव हैं। आपसे ही सब जीव उत्पन्न होते हैं इस लिये आप प्रजापति हैं। आप ही सबके अन्तःकरणमें शयन करते हैं इसालिये पुरुष हैं। (पुरमें शयन करनेसे पुरुष कहलाये हैं) उनको किसीने भी पैदा

नहीं किया है और वह स्वयं पूर्वमें ही विद्यमान हैं इसलिये उनको स्वयम्भुव कहा जाता है। वह स्वर्णिम प्रकाशपुंजमें बसे हुए हैं इस लिये सूर्यभगवानको हिरण्यगर्भ कहा गया है। तत्वदर्शी ऋषियोंने पानीको 'नार' कहा है। जलमें, पहला स्थान होनेसे ही सूर्य भगवानको नारायण पुकारा जाता है। विद्वानोंका कहना है कि सब कुछ प्रलयमग्न होजानेपर एक महासमुद्र रह जाता है, उसी एकार्णवमें आप शयन करते हैं, अतः नारायण कहलाते हैं।

वह सहस्रसहस्र शिर, सहस्रसहस्र पैर, सहस्रसहस्र चक्षु, सहस्रसहस्र वदन, सहस्रसहस्र मुख, सहस्रसहस्र बाहू रखने वाले हैं, प्रथम हैं, प्रजापति हैं, तेजोमय हैं, अतः सूर्य और रवि कहलाते हैं।

वही एक पुराणपुरुष, जो हिरण्यगर्भ और अन्धकारसे परे है, सब संसारका गोप्ताभी है। सहस्रसहस्र रातोंके समान प्रलयकालके अनन्तर सृष्टि रचनाके लिये वह ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है। भूमिको जलमग्न देखकर वह प्रभु विचार करता है और वराहरूप धरकर पानीमें प्रवेश करता है। इसतरह वह समर्थ महार्णवमें मग्न हुई महीका उद्धार करता है। महार्णवसे भूमिका उद्धार करनेके अनन्तर वही ब्रह्मा होकर सर्गका कार्य करता है। अपने मनके तेजसे, सर्वप्रथम, मानसपुत्रोंको उसी सूर्यभगवानने पैदा किया है। भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष और वसिष्ठ इन नौ प्रजापतियोंको पैदा करके वह पुरुषोत्तम प्रजाकी कामनासे अदितिके पुत्र होकर जन्म लेते हैं। मरीचिके पुत्र कश्यप दसवें प्रजापति हुए जो तेजमें ब्रह्माके ही समान थे। दक्ष प्रजापतिकी कन्या दिति

कश्यप ऋषिकी पत्नी थी। उसके गर्भसे एक प्रकाशमय अण्ड पैदा हुआ जो भूमि और जलसे लेकर आकाशतक छाया हुआ था। उससे द्वादशात्मा दिवाकर उत्पन्न हुए। उसका विस्तार ९००० योजन था। जिसप्रकारसे कदम्बका फूल चारों ओरसे केसरसे आच्छादित रहता है उसी प्रकारसे यह प्रकाशमय अण्ड भी किरणोंसे आच्छादित था। जिस आदि महापुरुषको सहस्रशीर्ष आदि पुकारा गया है, वह अपने पूरे तेजसे इस प्रकाशके गोलेमें विराजमान हुआ।

आदित्य अपनी सहस्र किरणोंसे गोलार्द्धमें स्थित जलको इस प्रकारसे तपाता है जिसप्रकारसे घड़ेके पानीको शतधा अग्नि तपाती है। फिर इन सहस्रकिरणोंसे आकृष्ट जलसे वही समुद्रको, नदीको, सरोवरोंको और कूपोंको जल देता है। दिनके अन्तमें सूर्यकी प्रभा अग्निमें प्रवेश कर जाती है इसी लिये अग्निका प्रकाश रात्रिको दूरसे भी दिखायी देता है। प्रातःकाल होनेपर वही सूर्यप्रभा अग्निसे निकलकर पुनः अपने पूरे तेजके सहित सूर्यकी किरणोंमें समा जाती है। सूर्य और अग्निमें प्रकाश और तेजकी अदलाबदली इसी, दिन और रातके, क्रमसे होती रहती है।

नारदजी बोले कि अब तुम्हें हम सूर्यकी किरणोंके नाम और उनकी व्यापकता बताते हैं। १ हेति, २ किरण, ३ गो, ४ रश्मि, ५ गभस्ति, ६ अभीषु, ७ वनानि, ८ उस्रा, ९ घृणि, १० मरीचि, ११ नाडि, १२ दीधिति, १३ साध्या, १४ मयूख, १५ भानु, १६ अंशु, १७ सप्तर्षि, १८ सुपर्णा, १९ कर, २० पाद—यह सूर्य-

किरणोंके वीस नाम शास्त्रोंमें कहे गये हैं। इनके नामकाम पृथक्-पृथक् हैं। सूर्यभगवान अपनी सहस्र किरणोंसे शीत, वर्षा और ग्रीष्मकालमें तपते हैं। इनमें अचिन्त्यमूर्ति चारसो किरणें वर्षा करती हैं। १ वन्दना, २ मेध्या ३ कातना, ४ केतना, ५ अमृता यह नाम वर्षा करनेवाली किरण समूहोंके हैं। शीत लानेवाली किरणें ३०० हैं। वह सब नामसे चन्द्रा हैं, जिन्हे पीताभा, गभस्ति, मेघपोषणी, आह्लादिनी और हिमसर्जनी कहा गया है। यही सम्यग रूपसे मनुष्योंका, देवताओंका और पितरोंका पोषण करती हैं। मनुष्योंको औषधि आदिसे, पितरोंको स्वधासे और देवोंको स्वाहासे (तीन तीन वार तर्पण करनेसे) यही किरणें पोषित करती हैं। वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओंमें तीन-तीनसौ किरणोंसे सूर्य-भगवान तपते हैं, शरत् और वर्षा कालमें चार-चारसौ किरणोंसे तपते हैं, और अन्तमें हेमन्त और शिशिरकालमें पुनः तीन-तीनसौ किरणोंके तापसे तपते हुए हिमोत्सर्ग करते हैं। सूर्यही अपनी किरणोंद्वारा औषधियोंमें वल देते हैं, स्वधामें स्वधी शक्ति देते हैं और स्वाहामें यथोचित अमृत भरते हैं।

द्वादशात्मा प्रजापति ही काल, अग्नि और ब्रह्मण है। यही सुरश्रेष्ठ तीन लोकोंको तथा सचराचरको ताप देते हैं। यही ब्रह्मा हैं, यही विष्णु हैं और यही महादेव हैं। ऋग्, यजु और साम-वेदकी ऋचाएं भी यही हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। सूर्य भग-वान उदय होते हुए ऋग्वेदकी ऋचाओंसे संदीपित रहते हैं, मध्यान्ह कालमें यजुर्वेदकी ऋचाओंसे प्रकाशित होते हैं और

सायंकालमें सामवेदकी ऋचाओंसे प्रदीप्त रहते हैं। यही तेजोराशि सूर्य सब लोकोंको, अगल-बगलमें, और ऊपर-नीचे प्रकाश प्रदान करते हैं। (आकाश-पातालको) जैसे घरमें दीपक सर्वत्र प्रकाश देता है, वैसेही ग्रहराज-जगत्पति अपनी सहस्र किरणोंसे तीनों लोकोंको जगमगाते हैं। भूलोकको भगवान आदित्य तीनसौ किरणों से प्रकाशित करते हैं। चारसौ किरणोंसे भुवः (पितर लोक) को और फिर तीनसौ किरणोंसे (स्वाहा) सुरलोकको प्रकाशित करते हैं। संसारमें यही शुक्र मण्डल सूर्यलोक कहलाता है। यही नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रादिकी प्रतिष्ठाका कारण है। चन्द्रादि जितने भी ग्रह-नक्षत्रादि हैं सब सूर्यसे ही उत्पन्न हुए हैं। मैं पूर्वमें जिन सहस्रकिरणोंका बखान कर चुका हूँ उनमें सात रश्मियां श्रेष्ठ और शुभ हैं। यही ग्रहोंकी उत्पत्तिका आधार हैं। १ सुषुम्ना, २ हरिकेशा, ३ विश्वकर्मा, ४ विश्वव्यचा, ५ सौम्य, ६ उदन्वसु, ७ सुराद, पर सात इन किरणोंके नाम हैं।

इनमें सुषुम्ना नामक रश्मिसे क्षीण हुए चन्द्रकी पुष्टि होती है। इस एक ही रश्मिसे सूर्यभगवान देवताओंको और चन्द्रको अमृत प्रदान करते हैं। इसीलिये सूर्य ही चन्द्र और तिग्म हैं। दीप्ति धातुके अनेक अर्थ होते हैं; शुक्लत्व, अमृतत्व, शीतत्व, प्रकाशत्व और आह्लादत्व इसी धातुसे प्रकट होते हैं। इसीसे उसको चन्द्र कहते हैं। संयद्वसु रश्मि मङ्गलको अनुप्राणित रखती है। दक्षिणमें विश्वकर्मा नामक रश्मि बुधको तृप्त करती है। उदावसु रश्मि बृहस्पतिकी शक्तिका आधार है। विश्वव्यचाको शुक्रका आधार

माना गया है। शनिश्चरको हरिकेशा नामक रश्मि पोषित करती है। इन्हीं रश्मियोंके प्रतापसे नक्षत्रोंका कभी क्षय नहीं होता और इसी लिये इनको नक्षत्र कहते हैं। क्षत्र शब्द बल, वीर्य, तेज आदिका वाचक है। इन नक्षत्रोंको सूर्य बल, वीर्य, और तेज देता है इसलिये ये नक्षत्र कहलाते हैं। शुक्लता होनेसे और तारण करनेसे इनको तारका कहते हैं। एक और रश्मि सूर्यकी है जो शास्त्रोंमें वृष्टिपति कही गयी है। इसके आधार और इसकी समता-पर ही जगत जीवित रहता है।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे सूर्यस्य
सर्वव्यापकत्व निरूपण नामक
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(८) सूर्यका सर्वजनकत्व

देवर्षि नारदने कहा—हे सांब, आदित्य तीनों लोकका मूल कारण है। इसीसे देव, दानव, मनुष्य, रुद्र, इन्द्र, महेन्द्र, विप्रेन्द्र और ब्रह्मा–विष्णु–महेश सहित सारा जगत पैदा होता है। यही जो महान द्युतिवाले तेजोपति हैं, यही सब लोकोंकी आत्मा हैं, यही सर्व लोकोंके ईश्वर हैं, यही देवादि प्रजापति हैं। सूर्यही तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाला परम देवता है। जैसे आगकी चिंगारियां इधर उधर फैलती हैं, वैसेही सूर्यसे निकले हुए अंशोंसे सब लोकोंकी उत्पत्ति है। आदित्यसे वर्षा होती है, वर्षासे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्राणी प्राणवान होते हैं। यह सब सूर्यसे ही पैदा होते हैं और फिर उसीमें लय होजाते हैं। फिरभी, भाव-अभावानुसार, आदित्यसे ही सब पैदा होजाते हैं। यही ध्यानियोंका ध्यान है, मोक्षार्थियोंका यही मोक्ष है। सूर्यलोकमें पहुंचनेका नाम ही निर्वाण है। उसीसे सब पैदा होते हैं।

क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु और युग-ये सब आदित्यसे पैदा होते हैं इसी लिये उनका नाम कालभी है। काल न हो तो जगतके सब नियमादि लुप्त हो जायं। सूर्यके उदय और अस्त होनेके नियम पर ही तो जप–तप–सन्ध्यावंदन और होम इत्यादि निर्भर रहते हैं। ऋतुओंका लोप हो जाय तो

पुष्प, कन्द, मूल, फल इत्यादि कहांसे मिलें, अनाज कैसे पैदा हो, घास और औषधि कहांसे प्राप्त हो, जीवजन्तुके सब व्यवहार ही तो बन्द हो जायेंगे। सूर्य अपनी किरणोंसे तपाकर पानीको न सोखे तो वर्षा न हों और सूर्यकी दी हुई वर्षा न हो तो परिपिद्धी न हो।

वसन्त ऋतुमें सूर्य कपिलवर्ण, ग्रीष्ममें कंचनवर्ण, वर्षा ऋतुमें श्वेतवर्ण ओर शरत् कालमें पाण्डुवर्ण लिये रहते हैं। हेमन्त ऋतुमें सूर्यभगवान ताम्रवर्णके और शिशिर ऋतुमें लोहितवर्णके लाललाल दिखायी देते हैं। ऋतु-सम्भव यह रङ्ग सूर्यके बताये गये हैं। और इन ऋतुन स्वभावजनित वर्णोंसेही सूर्य कल्याण करते हैं।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे सर्वजनकृत्य
प्रतिपादन नामक अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(९) सूर्यके वेदविदितनाम

इतनी कथा सुनाकर देवर्षि नारद बोले—हे सांब, अब सुनो आदित्यके सामान्यतः १२ प्यारे नाम हैं। मैं उन बारह नामोंका रहस्य तुझे पृथक-पृथक बताता हूं। १ आदित्य, २ सविता, ३ सूर्य, ४ मिहिर, ५ अर्क, ६ प्रभाकर, ७ मार्तण्ड, ८ भास्कर, ९ भानु, १० चित्रभानु, ११ दिवाकर और १२ रवि।

भगवानकी द्वादश मूर्तियोंके नाम ये हैं:—

१ विष्णु, २ धाता, ३ भग, ४ पूषा, ५ मित्र, ६ इन्द्र, ७ वरुण, ८ यम, ९ विवस्वान, १० अंशुमान, ११ त्वष्टा और १२ पर्जन्य।

यह बारह आदित्य प्रति मासमें जुदेजुदे स्वरूपमें उदय होकर दर्शन देते हैं। चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमासमें विवस्वान, आषाढमें अंशुमान रूपमें सूर्य तपते हैं। श्रावणमासमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र और कार्तिकमें धाता रूपमें सूर्यके दर्शन होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें दिवाकर और माघमासमें भग रूपमें दर्शन देते हैं। फाल्गुन महीनेमें त्वष्टा रूपमें सूर्यका आविर्भाव होता है।

इनमें विष्णु भगवान सहस्ररश्मिसे, अर्यमा ३०० रश्मियोंसे, विवस्वान २०० रश्मियोंसे, अंशुमान ५०० रश्मियोंसे, पर्जन्य

पर्जन्य २०० रश्मियोंसे, वरुण ३०० रश्मियोंसे, इन्द्र २६० रश्मियोंसे, धाता ११०० रश्मियोंसे, मित्र १५०० रश्मियोंसे, पूषा ११० रश्मियोंसे, भगवान १५०० रश्मियोंसे प्रकाशमान होते हैं। उत्तरायणमें क्रमशः रश्मियोंकी वृद्धि और दक्षिणायनमें क्रमशः केरणोंकी घटी होती जाती है यह सहस्ररश्मियां सूर्यलोक पहुंचानेवाली हैं। यह किरणें ऋतु–मासके क्रमसे फिर विभाजित होती हैं। इस प्रकार इनको २४ कहा गया है। विस्तारमें पुनः सहस्र बताया गया है।

अब सूर्य भगवानके नामोंके अर्थ सुनो। वह पार्थिवोंमें दिव्य है, अंशतः अवश्य है, अदिन अर्थात नित्य हैं इस लिये इनको आदित्य कहा गया है। अथवा यों समझ लो कि वेदशास्त्रोंने आपको अदितिके बड़े पुत्र होनेके कारण आदित्य कहा है। अपत्य प्रत्यय रहनेसे सूर्यका आदित्य होना सिद्ध होता है। स्रवन्ति धातुका स्पंदन अर्थ होता है। इससे निकलनेके कारण अथवा स्रवणसे तेजका बोध होता है इसलिये आपको सविता पुकारा गया है। शश्वत् माने उदय होना, अश्वत् माने सदा रहना है–इसीलिये वेदोपनिपदके ज्ञाता ऋपि महर्पियोंने और स्मृतियोंने आपको सूर्य पुकारा है। 'नु'का अर्थ प्रेरणा और 'भा' का दीप्ति लिया जाता है इसलिये आपको भानु पुकारा जाता है। आपमें शुक्लादि विविध वर्णभी हैं। क्योंकि रंगोंकी उत्पत्ति सूर्यकी किरणोंसेही है, इसीलिये आपका नाम चित्रभानु पड़ गया है। भाका अर्थ प्रकाश है और करका अर्थ किरण है। आपके हाथ किरणोंके रूपमें हैं अतः सूर्यभगवानको

भास्कर कहा गया है। आप प्रकर्षपूर्वक प्रदीप्तमान हैं अतः आपका नाम प्रभाकर है। दिनका अर्थ प्रकाश और दिन है। आप प्रकाश और दिनका कारण हैं अतः आप दिवाकर हैं। आप परिभ्रमण करते हुए तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हैं और रक्षा करते हैं अतः स्मृतियोंमें आपको सविता कहा गया है। आपकी अर्चना देवोंने भी की है, इसीलिये आपका अर्क नाम पड़ा है। विश्वके अण्डको द्विधा विभाजित करते हुए आपने पितृस्नेहसे कहा था कि 'आर्त मत हो!' इसीलिये आपको मार्तण्ड नाम मिला है। आप तीनों लोकोंको धारण करते हैं, इसलिये आप धाता कहलाते हैं। नाग, असुर, देवगणमें परम ऐश्वर्य सम्पन्न होनेसे आप इन्द्र कहलाते हैं। आप जगत रचनामें समर्थ हैं और शक्ल् धातु शक्तिके अर्थमें प्रयुक्त होता है, इसलिये आपको शक्र कहा गया है। आप सूर्यमें अन्तर्हित होकर अदृष्टरूपसे बैठे हुए हैं इसलिये विवस्वान हैं। सूर्य मेघके रूपमें* अतिशय गर्जते हैं इसलिये आपको पर्जन्य कहते हैं। आपसे परे किसीकी गति नहीं है, इसीलिये सूर्य अर्यमा हैं। आप परम स्नेहसे सब जीवोंका पालनपोषण करते हैं इसीलिये आपका नाम मित्र है। आप सबको वर देनेवाले हैं अतः वरुण कहलाते हैं। सूर्यभगवान ही तीनों लोकोंको पुष्टि देनेवाले हैं, अतः आपका नाम पूषा है। आपकी सब देवता पूजा करते हैं और आपकोही भजते हैं, इसीलिये आपको भग पुकारा गया है। तुष धातु तुष्टिके अर्थमें प्रयुक्त होता है और सूर्य भगवान जगतको उत्पन्न

करके तुष्ट भी करते हैं अतः वेदोंने आपको त्वष्टा पुकारा है। सूर्य भगवानकी रश्मियोंने ही सारे जगतको व्याप्त कर रखा है और विपु व्याप्तिके अर्थमें प्रयुक्त होता है अतः आपका नाम विष्णु है। आपका शरीर अप्रमेय और बृहद् है, अतः आपको ब्रह्मा कहा गया है। महत् धातुका पूजाके अर्थमें प्रयोग होता है और सूर्य भगवानकी बड़े बड़े देवताभी पूजा करते हैं, इसीलिये आपको महादेव पुकारा जाता है। उग्र, प्रतापवान, देखनेवाला होनेके कारण आपका नाम रुद्र भी है। आपही सृष्टिको उत्पन्न करते हैं और आपही उसको अपनेमें लय कर लेते हैं इसी लिये भगवानका नाम महाकाल है। यह और है, वह नहीं है, इत्यादि बातें भिन्नदर्शी कहते हैं, वे तामसी और मूढ जीव होते है। कोई जगतका कारण विष्णुको बताते हैं, कोई शिवको ओर कोई सूर्यको। जैसे एक ही स्फटिक मणि सूर्यकिरणोंसे विभिन्न रंगोंमें चमकता है, उसी प्रकार एकही स्वयम्भू भक्तिके अतिरेकसे जुदे जुदे नामोंमें मान लिया गया है। यह जुदे जुदे रूप परब्रह्मके गुण-विशिष्टकी पूजाके रूपही हैं। आरम्भमें मेघ एकही रहता है। वही जलके रूपमें बरसता है और नदी, तड़ागों तथा नालोंमें बह जाता है। अथवा जैसे वायु मूलतः एकही होता है, पर गन्ध दुर्गन्ध और शीतलतादिके कारण उसके जुदे जुदे नाम हो जाते हैं, जैसे अग्नि एकही है, पर पीछेसे कार्य निर्वाहार्थ गार्हपत्यादि उसके नाम पड़ जाते हैं, इसी प्रकार उस परब्रह्मके गुण-

विशिष्टको लेकर अनेक नाम पड़ गये हैं। पर वास्तवमें पृथक पृथक रूपोंमें भी वही है और एक रूपमें भी वही है। अतः इस दिवाकरकी ही भक्ति करनी चाहिये। क्योंकि—

> एप ब्रह्मा च विष्णुश्च एप एव महेश्वरः।
> एप वेदाश्च यज्ञाश्च स्वर्गश्चैव न संशय ॥

सूर्यही ब्रह्मा है, सूर्यही विष्णु है, सूर्य ही शिवशंकर है। वास्तवमें वेद भी सूर्य ही है और यज्ञ तथा स्वर्ग भी सूर्य ही हैं। जगतमें स्थावर जङ्गम जो कुछ भी है उस सबमें सूर्य व्याप्त है। अन्न और पानीके रूपमें भी हम सूर्यकोही ग्रहण करते हैं। भिन्न नाम रूपसे सर्वत्र सूर्यभगवानही विद्यमान हैं। आकाशमें, अन्तरिक्षमें, वायुमें, अग्निमें—सबमें वही तो हैं। इस रूपमें तो जाने अनजाने सब ही सूर्यको पूजते हैं। पर जो जन जानकर सूर्यकी पूजा करते हैं वे सूर्यलोकमें ही पहुंचते हैं और सूर्यमेंही लीन हो जाते हैं। यही मोक्ष है जहांसे जीव पुनः नहीं लौटता है। जो व्यक्ति सूर्यके एक नामका भी वेदविदित अर्थ जान लेता है वह सब रोगोंसे छूटकर पापरहित हो जाता है।

हे सांब, पापियोंके हृदयोंमें भास्करके प्रति भक्ति होती भी तो नहीं है, इसलिये तू तो सूर्यकी भक्ति ही कर। इसीमें कल्याण है।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे सूर्यस्य नामरूप
निरूपण नामक नवमोऽध्याय ॥९॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(१०) सूर्य पत्नियोंकी उत्पत्ति

वसिष्ठ ऋषि, नारदजी द्वारा साम्बको दिये गये हितोपदेशकी कथा सुनाकर, राजा वृहद्बलसे कहने लगे कि हे राजन, यह कथा सुनकर जाम्बवतीतनय साम्बको बडा कौतूहल हुआ और उन्होंने नारदजीसे फिर पूछा, महाराज! आपने तो हर्ष बढानेवाला सूर्यका पुनीत माहात्म्य भला सुनाया। इससे परमदेव सूर्यके लिये मेरे हृदयमें भक्ति उत्पन्न होगयी है। अच्छा तो, हे महामुने, अब महाभागा राज्ञीकी, निक्षुभाकी, दण्डिकी, और पिंगलादिकी भी कथा थोड़े विस्तारसे मुझे सुनाइये।

नारदजी बोले कि हे साम्ब, मैं पहलेही कह चुका हूं कि सूर्य भगवानकी दो भार्याएं हैं जिनके नाम राज्ञी और निक्षुभा हैं। इनमें राज्ञीको द्यौ और निक्षुभाको पृथ्वी समझना चाहिये। पौषके कृष्णपक्षकी सप्तमीको राज्ञी (द्यौ) सूर्यको पूजती है। माघमासके कृष्णपक्षकी सप्तमीको सूर्य निक्षुभाके साथ रहते हैं। आदित्यके संगसे उस दिन ऋतुस्नाता (पृथ्वी) मही गर्भ धारण करती है। आकाशसे वर्षाद्वारा जल भूमिपर गिरता है। इसीको लौकिक वार्तामें सूर्यसे पृथ्वीके गर्भ रहना कहा गया है। इसीके पश्चात् पृथ्वी अन्न उत्पन्न करती है। अनाजकी फसल आनेपर द्विजगण अग्निहोत्रादि करते हैं। स्वाहाकार और वषटकारके साथ दी गयी आहुतियोंसे देवगण और पितरगण परितुष्ट होते हैं। मही

इसप्रकारसे स्वाधामृत रूपिणी औषधियोंसे तृप्त करती है, इसी लिये उसका नाम निक्षुभा पड़ा है। अब वह कथा सुनाते हैं जिसमें राज्ञीके पृथक् होनेकी और उसकी सन्तानका वर्णन है।

ब्रह्माजीके पुत्र मरीचि ऋषि हुए। मरीचि ऋषिके पुत्र कश्यप ऋषि हुए। उनके हिरण्यकशिपु हुए। हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद हुए। प्रह्लादके पुत्र विरोचन हुए। विरोचनकी बहन, हिरण्यकशिपुकी पौत्रीको विश्वकर्माकी पत्नी प्रह्लादी कहा गया है। सुरूपा नामसे मरीचि ऋषिकी एक और पुत्री थी। वह अंगिरा ऋषिकी पत्नी और बृहस्पतिकी जननी हुई। बृहस्पतिकी बहन भुवनी विख्यात ब्रह्मवादिनी थी। वह आठवें वसुकी पत्नी हुई। उसने सर्व-शिल्पनिशारद विश्वकर्माको उत्पन्न किया था। विश्वकर्माके त्वष्टा नामक पुत्र हुआ। विश्वकर्माकी दुहिता तीनों लोकोंमें विख्यात रेणु हुई। उसका नाम राज्ञी हुआ जो सूर्यको ब्याही गयी थी। उसी विश्वकर्माकी एक दूसरी पुत्री निक्षुभा थी जो महीमयी है। ये दोनों मार्तण्डकी भार्याएं हुई। इन साध्वी पतिव्रता रूपयौवनशालिनी स्त्रियोंके साथ रमण करनेके लिये सूर्यभी नररूप लेकर रहने लगे। पर आदित्यका रूप तो महातेज-पुंजमय है। वह तेज सूर्यकी पत्नी राज्ञीको सहन न होता था। पिताने पुत्रीके शरीरको देखकर सूर्यसे कहा कि हे सूर्य तुम्ही आर्त हो—तेरा भी शरीर छिदे। फलतः ऐसा ही हुआ।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे राज्ञी निक्षुभोत्पत्ति
नामक दशमोऽध्याय ॥१०॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(११) सूर्यकी सन्तानोंका वर्णन

इतनी कथा सुनाकर देवर्षि नारद सांचसे कहने लगे कि हे राजकुमार, अब मैं सूर्यभगवानकी सन्ततिकी कथा सुनाता हूँ। राज्ञीसे सूर्यके तीन बालक हुए—इनमें दो पुत्र थे और तीसरी कन्या थी। पहला पुत्र वैवस्वत मनु हुआ जो कि श्राद्धदेव और प्रजापति है। फिर यम और यमी (कालिंदी–जमना) जुड़वां रूपमें पैदा हुए। सूर्यका तेज संज्ञाके लिये असह्य था। इसपर संज्ञाने अपनी छायाको बुलाकर कहा—तू मेरे स्वरूपके अनुसार नारीका रूप ले सूर्यके निकट रह।

इसपर संज्ञाकी छाया संज्ञाका रूप लेकर वहां रहनेको तैयार होगयी। वह हाथ जोड़कर बोली कि हे देवी, तुमने मुझे जिस लिये उत्पन्न किया है मैं वह सब कार्य तुम्हारी आज्ञाके अनुसार करूंगी। चाहे कार्य कितना भी कठिन क्यों न हो। संज्ञाने कहा कि देख, मैं तो अपने पिताके घर जारही हूँ, अब तुझे मेरे घरमें निर्विकार रूपसे रहना होगा। यह दोनों पुत्र हैं और वर-वर्णिनी कन्या है। इनको संभालकर रखना। यह ध्यान रहे कि मेरे जानेकी बात भूलकर भी सूर्यको नहीं बतानी है।

छाया बोली, बहुत अच्छा! देवी आप सुखसे पधारिये, मैं यह बात सूर्यको न बताऊंगी। छायाके यह कहनेपर संज्ञा पिताके घर चली गयी। पिताके घर जाकर वह तपस्विनी सहस्र वर्षतक वहीं

रही। इस बीचमें पिताने पुनः पुनः कहा कि तू अपने पतिके घर क्यों नहीं जाती है। इसपर संज्ञा घोड़ीका रूप लेकर उत्तर कुरुक्षेत्रमें तप करने लगी। इधर संज्ञाके चले जानेके पश्चात उसकी छाया संज्ञाकी शोभा बनाकर ही सूर्यके पास रहने लगी। सूर्यने यही समझा कि यह कोई अन्य नहीं है, वह पहली संज्ञाही है। कुछ दिन बाद सूर्यसे छायाके भी सन्तति हुई। दो पुत्र हुए और कन्या हुई। पुत्रोंके नाम श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा हुए। कन्याका नाम तपती रखा गया जो रूपमें अप्रतिम थी। श्रुतश्रवा आगे सावर्णि नामसे मनु होंगे। श्रुतकर्मा का दूसरा नाम शनैश्चर है। छाया संसारी नारियोंकी भांति बालकोंसे दुभाव करने लगी। वैवस्वत मनु तो इस बातको सहन करते चले गये, पर यमसे यह व्यवहार सहन न हुआ। एक दिनकी बात है कि यमने क्रोधके वशमें होकर और होनहारकी प्रबलताके कारण पैर उठाकर छायाको लात मारनेकी धमकी दे डाली। इसपर कुपित होकर छायाने भी यमको शाप दे डाला—

"तूने अपने पिताकी भार्याको, जो माताके समानही पूजनीया है, लात दिखाकर डराया है, अतः मैं शाप देती हूं कि तेरी लात भूमि पर रखते ही गल जायगी।"

इसपर यमको बड़ा क्लेश हुआ। उसने बड़े भाईके साथसाथ सब बातें पिताको सुनादीं। उन्होंने कहा कि हे पिताजी हम सबके साथ माताका समान स्नेहपूर्ण व्यवहार नहीं है। हमें छोड़कर ही वह छोटे भाइयों और छोटी बहनका दुलार करती

है। इसपर क्रोधके वशमें होकर मैंने मातापर लात उठायी है, पर उसके शरीरको मेरे पैरने स्पर्शतक नहीं किया है। इतने पर भी उसने इतना भारी शाप दिया है कि तेरा पैर भूमिपर पड़ते ही गलकर गिर जायगा। ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे पैरपर कोई संकट न आये।

सूर्य बोले कि जब तेरे समान धर्मज्ञानवाले धर्मशालीने क्रोधावेशमें होकर लात उठायी है तो निश्चय ही इसका कोई कारण होगा। वैसे तो सब शापोंका प्रत्याघात रहता ही है, किन्तु माताके शापसे निपटारा नहीं होता। इसलिये मैं भी माताके शापको नितान्त झूठा तो नहीं कर सकूंगा, पर तेरे स्नेहवश कुछ न कुछ करना ही होगा। अच्छा तो जा तेरा पैर गलकर नहीं गिरेगा वरन तेरे पैरसे गलता हुआ मांस लेकर कीड़े भूमिमें जा गिरेंगे। और जा तू भलोंका त्राता और बुरोंका पीड़क होगा।

नारदजी बोले कि यमसे इतना कह चुकनेके बाद सूर्यभगवान ने निज पत्नीसे, जाकर, पूछा कि हे शोभने तू बालकोंमें भेदभाव किस लिये रखती है—यह सब तेरेही तो हैं। पर छायाने कोई बात न बतायी। जब नाशका शाप देनेके लिये भगवान तैयार होगये तो छायाने सारा वृतान्त कह सुनाया। यहासे क्रुद्ध होकर सूर्यभगवान अपने श्वसुर विश्वकर्माके घर जा पहुंचे। उन्होंने क्रोधपूर्ण रीतिसे अपने आनेका कारण श्वसुरको बताया तो विश्वकर्माने रोष शमनकारी रीतिसे सान्त्वना देते हुए भगवान सूर्यसे कहा—

विश्वकर्मा—आपका यह महातेज तो सबके लिये दुःसहनीय है। संज्ञा इसीको सहन न कर सकनेके कारण वनमें तपस्या कर रही है। आप देखेंगे कि आपकी शुभचारिणी भार्या आपके तेज को सहन कर सकनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये कितनी तपस्या कर रही है। हे सुरश्रेष्ठ, आपको यदि मेरी बात अच्छी लगे तो मैं आपका रूप थोड़ा निखार दूँ। आपका महातेज सब ओर समान है इसीसे संज्ञाको कष्ट होता है।

सूर्य भगवान विश्वकर्माका वचन सुनकर संतुष्ट हो गये और उन्होंने उनको बहुत माना। विश्वकर्मा भी आज्ञानुसार खराद लगाकर रूप निखारनेको तैयार हो गये। खरादपर चढाकर रूप निखारा जाने लगा तो सूर्य भगवानका स्वरूप पहलेसे भी अधिक शोभन होता चला गया। फिर भगवानने योगसे अपनी भार्याका पता लगाया। वह वनमें घोड़ीके रूपमें तप कर रही थी। सूर्य भी घोड़ेका रूप धरकर उसके निकट जा पहुंचे। वनमें सूर्यसे संज्ञाके दो पुत्र हुए जो अश्विनीकुमार कहलाये। ये देवताओंके चिकित्सक हुए। उनके मुख घोड़ोंके समान थे, वे हाथोंमें धनुषबाण लिये हुए थे। भगवान सूर्यने इनका नाम रैवत भी रख दिया क्योंकि ये रेतसे पैदा हुए थे। सूर्यने कहा कि सातों लोका और सातों पातालोंमें तुम्हें लोग पूजेंगे। खेलते कुदते और खाते पीते हुए वसुमती पर आनन्द करोगे।

मनु, यम, यमुना, सावर्णि, शनैश्चर, तपती और अश्विनीकुमार यह सूर्यकी सन्तति हैं। इनमें पहले तीन संज्ञाकी सन्तति हैं, दूसरे तीन उसकी पार्थिवी छायाकी सन्तान हैं।

संज्ञाकोही राज्ञी कहा गया है।

छायाकोही निक्षुभा पुकारा गया है।

राज् धातुका प्रयोग राजते या शोभते अर्थमें होता है। सर्व संसारमें दिवाकर ही अधिक शोभाशील और तेजोमय हैं। अधिकतर शोभा पानेके कारण किसीको राजा कहा जाता है। और इसी लिये राजपत्नीको राज्ञी कहा जाता है।

क्षुभ धातुसे संचलन अर्थ होता है। इसीसे निक्षुभाका अर्थ निश्चला हुआ। स्वर्गमें भी वह निश्चल रूपसे ही है अतः उस दिव्य छायाको निक्षुभा नामसे स्मृतियोंने पुकारा है।

छायाके शापके पश्चात यम भी बहुत डरे रहते थे, और धर्मका पूरापूरा पालन करते थे। इस लिये धर्मराज हुए। शुभ कर्मोंद्वारा उन्होंने परमद्युति प्राप्त की। उन्होंने पितरोंका आधिपत्य और लोकपालपद पा लिया। बड़े पुत्र जो थे, वह इस मन्वन्तरके मनुही हैं। उन्हींका वंश इक्ष्वाकु वंश है जिसमें राजा वृहद्बल उत्पन्न हुआ। इन दो भाईयोंकी छोटी बहनका नाम यमी है—वही लोकपावनी जमना नदीके रूपमें भूमण्डलपर अवतरित हुई है। श्रुतश्रवा आगे आनेवाले मन्वन्तरमें सावर्णि नामक मनु होंगे। इन दिनों वे मेरू पर्वतकी चोटीपर तपस्या कर रहे हैं। उनके भाई शनैश्चरको महाग्रह होनेका गौरव मिल गया है। सूर्यकी सबसे छोटी कन्याका नाम तपती है, वह राजा संवरणकी शुभ पत्नी हुई और तपती नामक नदी होकर विन्ध्याचलसे निकलकर

दक्षिणमें बहती हैं। यमुना और तपती, दोनों ही पुण्य-सलिला नदियां हैं। अश्विनीकुमारोंको भी देववैद्यत्वका यशस्वी मानपद मिल गया है। इस लोकके समस्त वैद्यजन उनके कर्मोपजीवी ही हैं। रैवन्त नामक जो पुत्र सूर्यके हुआ वह बहुत ही रूपवान है। वह सत्यवान और पवित्र है और शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाला है। पूजाके समय वह सहज ही ध्यानमें आकर दर्शन दे जाते हैं।

जो मनुष्य इन देवताओंके जन्मकी कथा पढें या सुनेंगे, उनके पुत्रोंका कल्याण होगा और तेज बढेगा। आपदाओंमें पड़े हुए आपद् विमुक्त होजायगे और जो बिना आपदमें पड़े ही यह कथा पढे या सुनेंगे उनको बहुत अधिक फल प्राप्त होगा।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे सूर्यसन्तति वर्णन नामक एकादशोऽध्याय ॥११॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(१२) सूर्यके रूप निखारनेकी कथा

सांब, सूर्यकी सन्ततिकी कथा सुनकर, नारदजीसे बोले कि वर्षि महाराज, आपने इसके पूर्व सूर्यके रूप निखारे जानेकी कथा नायी थी; पर आपने सब कथा अति संक्षिप्त रूपमें सुनायी है। सुव्रत, बड़ी कृपा होगी यदि आप उस कथाको विस्तारपूर्वक झे सुनानेका कष्ट स्वीकार करेंगे।

देवर्षि नारद बोले, हे यदुकुलनंदन सांब! जब संज्ञा पिताके घर चली गयी तो सूर्यने सोचा कि संज्ञा मेरे रूपके निखारकी आकांक्षा रखती है। इसी लिये वह यशस्विनी पिताके घर चली गयी है और तपस्या कर रही है। भगवानने मनमें कहा कि इस लिये मैं संज्ञाका मनोरथ भी पूरा करूंगा। इसी बीचमें ब्रह्माजी वहां जा पहुंचे और सूर्यके लिये परम प्रीतिकर मीठी वाणीमें कहने लगे–

महाराज, आप तो सब देवताओंके भी आदि देवता हैं, यह बात मुझे स्वयं विदित है। आपका श्वसुर विश्वकर्मा है। वही आपका रूप निखार देगा। इतना कहकर ब्रह्माने विश्वकर्मासे भी कहा–परम शोभन मार्तण्डका रूप निखार दो। इसपर ब्रह्माकी आज्ञा पाकर विश्वकर्माने भास्करको खरादपर चढा लिया। फिर धीरे धीरे उसने भास्करका रूप निखारना शुरू कर दिया। उसके इस कार्यसे ब्रह्माजी अन्यान्य सब देवताओं सहित परम

प्रसन्न हुए और वेदवेदांग सम्मत नाना स्तोत्रोंका पाठ करने लगे। वे कहने लगे कि हे जगन्नाथ, हे वर्षा, घाम और हिम प्रदान करनेवाले, आपका जयजयकार हो। हे देवादि देव दिवाकर तीनों लोकोंको प्रसन्नतापूर्वक आप शान्ति दीजिये। फिर रुद्रने और विष्णुने भक्तिभावपूर्वक सूर्यभगवानको प्रसन्न करते हुए कहा कि हे दिवस्पति, इस प्रकार निखारे जानेपर आपका तेज और अधिक बढ़ जाय। इन्द्र भी आपहुंचे। उन्होंने जब देखा कि सूर्य भगवानका रूप निखारा जा रहा है और ब्रह्मादिक देवता स्तुति कर रहे हैं तो इन्द्र भी पुकारने लगे कि "हे जगत्पति, आपकी जय हो, जय हो—शश्वत् जय हो!" विश्वमित्रादि सातों ऋषि भी वहां आगये और "स्वस्ति—स्वस्तिपूर्वक विविध स्तोत्र पाठ करते हुए भगवानको रिझाने लगे। फिर वालखिल्य ऋषि गणोंने वेदोक्त शीर्षमंत्र पढ़पढ़कर भास्करको प्रसन्न किया— "हे नाथ आप मोक्षार्थियोंके लिये मोक्ष हैं, आप ध्यानी जनोंके लिये ध्यान हैं। आप सब भक्तोंको स्वर्ग देनेवाले हैं और आपमें ही सबकी स्थिति है। हे देवेश, आपकी कृपासे जगतका कल्याण हो। हे जगत्पते प्रसन्न हो जाइये।" विद्याधर, नाग, यक्ष, राक्षस, पन्नगादि भी हाथ जोड़कर और शिर झुकाकर मन और कानोंको सुख देनेवाली विविध प्रकारकी वाणी बोलने लगे। "हे प्रभु कृपा कीजिये कि अब आपका तेज भक्तोंके लिये सह्य हो जाय।"

फिर हाहा और हूहू गन्धर्वोंने तथा नारदजीने भास्कर भगवानको सन्तुष्ट किया। कुशल गन्धर्वोंने जो षड्ज, मध्यम,

ग्राधार-ग्रामत्रयके जाननेवाले थे, गायन शुरू कर दिया। वे मूर्छना और ताल संधारित संगीत छेड़ने लगे। १ विश्वाची, २ घृताची, ३ उर्वशी, ४ तिलोत्तमा, ५ मेनका, ६ सुजन्या, और अप्सराओंमें श्रेष्ठ अप्सरा रम्भा भी आ पहुंचीं और नृत्य दिखाने लगी। उसने हावभावयुक्त नाचसे अनेक अभिनय किये। फिर सब देवताओंके मनोंको और श्रोत्रोंको सुखदेनेवाले कलापूर्ण अतीव उत्तम वाद्य बजने लगे। वीणा, वेणु, पणवा, पुष्कर, मृदङ्ग, पटहा, देवदुन्दुभी, शंख, आदि सैकड़ों और हज़ारों प्रकारसे बाजे बजाये गये। एक ओर गन्धर्व गा रहे थे, दूसरी ओर अप्सराएँ नाच रही थीं; तीसरी ओर अनेक प्रकारके बाजे बजते जाते थे। इन सबसे, वहा खूब कोलाहल होगया।

फिर हाथोंमें पद्मकेसरादि लेकर, ललाटोंसे ऊपर अञ्जलिया उठाये हुए, नतमस्तक सब देवता स्तुतिया गाने लगे। इस स्थितिमें विश्वकर्माने, शनैः शनैः सूर्यभगवानका तेज निखारना जारी रखा। ब्रह्मा विष्णु महेश द्वारा प्रशस्ति प्राप्तकर हिम जल घर्म-कालके हेतु सूर्यनारायण रूप निखरवाकर अपने लोकको चले गये।

इति श्री हिन्दी साबपुराणे सूर्यरूपनिवर्तन
नामक द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

ॐ सिद्धगणेशायनम

(१३) विश्वकर्माकी स्तुति

साम्बने फिर पूछा कि हे देवर्षि नारद, खराद पर चढे हुए, रूप निखराते समय, सूर्यकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिये जो स्तुतियाँ देवताओंने पढी थीं, वह भी तो आप मुझे सुनाइये।

देवर्षि नारद बोले कि हे श्रीकृष्णनन्दन, सर्व प्रथम विश्वकर्मा, खरादपर चढे हुए सूर्यका रूप निखारता हुआ, यह स्तुति सुनाने लगा'—

प्रयत्नत प्रणतहितानुकम्पिने महस्वत समनव सप्तसप्तय।
विवस्वते कमल कुलाव बोधन नमस्तम पन्ल पगाव पाग्नि ॥१॥

पानाथ शुचि पुण्यकर्मणे नैक काम विपय प्रदायिन।
भास्वरामर मयूख मालिने सर्वलोक हितकारिण नम ॥२॥

अनाय अकमय कारणाय भूतात्मन गोपतये वृषाय।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सुयाय सव प्रभवाप्ययाय ॥३॥

विवस्वते ज्ञान भृदन्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिण।
स्वयं भुवे लाक समस्त चक्षुष सुरोत्तमायामित तजस नम ॥४॥

क्षणमुदयाचल मौलिमाणि सुरगणवन्द्याय हितो जगत।
त्वमुरु मयूख सहस्र वपुर्गति विभासितमाशिसुन्नू ॥५॥

तव तिमिराम्बर पानमदाद्भवात दिशाहिन विमदता।
निहर विभान्वियत सुतरां निपुनम भावन तीक्ष्ण वर ॥६॥

स्वमविहत्य समावयव परितापि कल्पित मूर्त रम।
सततमपि न हयभग्नवराः नाभिभवन्ति बरम् ॥७॥

अमृत सुधाद रजन सम सुरगण भूतगणेन समम्।
प्रणिपालित पदानिलय सुर समदा हय प्रथितम ॥८॥

तव पद पासु पवित्र तनश्चामरत्पद प्रभा भ्रुतम।
त्रिभुवन पावन पाहि रव वि बुध गदार्त पुनं गानतम ॥९॥

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे विश्वकर्माकृत स्तुति कीर्तन नामक त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

ॐ सिद्ध श्रीगणेशायनमः

(१४) ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुति

साम्बने फिर कहा कि महाराज यह शुभ कथा सुनते-सुनते तो मेरी आत्मा अतृप्तही बनी हुई है। अतः इस विषयमें फिर भी कुछ कथा सुनाइये।

देवर्षि नारदने कहा कि हे साम्ब, आदित्य भगवानकी कथा परम दिव्य है और सब पापोंका नाश करनेवाली है। मैं उस कथाको तुझे सुनाता हूँ जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माने स्वयम् कहा था और जो तीनों लोकोंकी परम भाविनी कथा है। एक दिन ब्रह्मलोकमें पितामह ब्रह्माजीसे, तपते हुए सूर्यकी किरणोंसे ज्ञान मोहित हुए, ऋषिगणने पूछा था —

हे पितामह, यह प्रचण्ड आगके समान तपता हुआ प्रचुर-रश्मि-वाला सूर्य कौन है ? हम सब ऋषिगण यह सुनना चाहते हैं कि यह कौन है और इसमें किसका प्रकाश है ?

ऋषियोंका प्रश्न सुनकर ब्रह्माजीने कहा—

महा प्रलयकालमें जब सब स्थावर जंगम नष्ट होकर ब्रह्ममें लीन हो गये तो, गुण हेतुके प्रकृतिकालमें पहले बुद्धि पैदा हुई। फिर महाभूतोंका जनक अहंकार उत्पन्न हुआ। फिर वायु-अग्नि-जल-आकाश-भूमिमय ब्रह्माण्ड पैदा हुआ। उसी महा अण्डमें यह सातों लोक हैं; सातों द्वीपों और सातों समुद्रों सहित पृथिवी भी

उसी अण्डके अन्तर्गत हुई। उसीमें मैं (ब्रह्मा), विष्णु, और महेश अवस्थित हुए। उस समय सबने अन्धकारसे दुःखी होकर परमेश्वरकी प्रार्थना की। इसपर अन्धकारका नाश करनेवाला महा तेज प्रकट हुआ। उस समय, ध्यानयोगसे जान चुकनेपर, हम सबने पृथक पृथक रूपसे, सविताकी, दिव्य स्तुतियोंसे प्रार्थनाएं कीं।

तुम आदिदेव हो देवोंमें तुम ईश्वर हो तुम परमेश्वर।
तुम सब भूतोंके कर्ता हो हे देवदेव हे सर्वेश्वर॥
तुम देव दनुज गन्धर्वोंके तुम सब सत्वोंके जीवन हो।
मुनि किन्नर सिद्ध-नाग पक्षी जड चेतनमें तुमही तुम हो॥
तुम ब्रह्मा हो तुम महादेव हे जगत्पते हो विष्णु तुम्हीं।
तुम वायु इन्द्र हो, सोम देव तुम विवस्वान हो वरुण तुम्हीं॥
तुम महाकाल हो, जनक तुम्हीं तुम हन्ता हो तुम भर्त्ता हो।
सरिता सागर गिरि विद्युतके तुम इन्द्रधनुषके कर्त्ता हो॥
तुम प्रलय प्रभवसे परे प्रभो तुम व्यक्ताव्यक्त सनातन हो।
तुम हो जगताके प्राण प्रभो तुम ही तन हो तुमही मन हो॥
ईश्वरसे परे भी विद्या है विद्यासे परे हे शिवशंकर।
हो शिवशंकरसे परे तुम्हीं हे दिवस्पति हे अभयङ्कर॥
तुम हाथ-पैर मुख-आंख-नाक सबमें हो शक्ति स्वरूप हरे।
सब कानोंकी हो श्रवणशक्ति तुम रूपरूप बहुरूप हरे॥
हे सहस्राशु, हे सहस्रपाद हे सहस्ररश्मिकरके स्वामी।
हे भुर्भुव स्वर्लोकपते हे मह सत्य-तप-जन स्वामी॥

हे हे प्रदीप्त हे दिव्य ज्योति हे सर्वलोकके उजियाले।
हे असह्-प्रखर देवाधिदेव हे अन्धकार हरनेवाले॥

सुर सिद्धजनोंके ध्येयदेव ऋषि मुनिजनके हे हृदयहार।
भृगु-अत्रि-पुलहसे गीयमान अव्यक्त रूपको नमस्कार॥

बस वेदविदों सर्वज्ञोंको मिलती है झलक सुख सर्वसार।
हे सब देवोंमें महादेव तेरे स्वरूपको नमस्कार॥

हे वैश्वानर हे सुरवन्दित हे स्वयम सृष्टि, हे सृजनहार।
हे सबमें व्यापक ध्यानगम्य तेरे स्वरूपको नमस्कार॥

जो वेदोंसे है परे सदा यज्ञोंसे पार, लोकोंके पार।
भुवि- अन्तरिक्ष दिविसे भी परे तेरे स्वरूपको नमस्कार॥

जो अविज्ञेय जो अनालक्ष्य अध्यात्मगति है जो अपार।
जो अव्यय आदि-अन्त विरहित तेरे स्वरूपको नमस्कार॥

नमस्कार हे पाप विमोचन नमस्कार कारनके कारन।
नमस्कार सुर-मुनि-ऋषि वन्दित नमस्कार सब ताप विनाशन।

नमस्कार सब शुभ वरदायक नमस्कार धनधान्य प्रदाता।
नमस्कार शुभमतिके दाता नमस्कार सुख-शान्ति विधाता॥

यह स्तुतियां सुनकर परम तेजरूपमें स्थित परमात्माने परम कल्याण-कारिणी वाणीमें कहा आप लोग क्या वरदान मांगते, मांगिये।

ब्रह्माजी बोले कि हे प्रभो, आपका यह महातेजोमय स्वरूपतो किसीसे भी सहन नहीं होता है। ऐसी कृपा कीजिये कि अब आपका यह स्वरूप, जगतके हितके लिये, सबके सहन करने योग्य

होजाय। भगवान आदित्यने भी ब्रह्माजीकी इस प्रार्थनाको स्वीकार करके कहा—"एवमस्तु" जाओ ऐसाही होगा। तीनों लोक निवासियोंके कार्योंकी सिद्धिके लिये यही धूप-वर्षा-बर्फ देनेवाला होगा। इसीलिये, तबसे, जो मोक्षाकांक्षा रखनेवाले ऋषि-मुनिगण हैं वे सब सांख्ययोगसे अथवा अन्य विधियोंसे हृदयस्थित दिवाकरकी आराधनाही किया करते हैं। चाहे कोई सर्वलक्षण-हीनही हो, चाहे कोई सर्वपावकयुक्तही हो, सूर्यदेवता अपने आश्रितजनोंका उद्धारही करते हैं। अग्निहोत्र, वेद, यज्ञ और बहुतसा दानधर्म—यह सब शुभकर्म, भक्तिभाव संयुक्त सूर्यको नमस्कार करनेके सामने सोलहवाँ अंश भी नहीं हैं। भगवान दिवाकर तो तीर्थोंके परमतीर्थ हैं, मंगल प्रदाताओंके परममंगल प्रदाता हैं, परमपवित्रोंमें भी परमपवित्र हैं। अतः मैं उन्हींकी शरण हूं। ब्रह्मादि सर्वदेवोंसे स्तुतिप्राप्त भास्करको जो जन नमस्कार करते हैं, वे सर्व किल्बिष विरहित होकर सूर्यलोकमें जाते हैं।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे ब्रह्मोक्त सूर्य स्तवन
नामक चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(१५) तेज छाँटे जानेकी कथा

साम्बने पूछा कि भगवान भास्करके रूपका निखार किस प्रकारसे और किन देवताओं या ऋषियोंके कहनेसे कराया गया है। आप यह कथा मुझे सुनाइये।

देवर्षि नारद बोले कि एकबार देवलोकमें सुखसे आसनपर विराजे हुए ब्रह्माके पास जाकर सब देवता और ऋषियोंने यह कहा—

हे भगवन्! यह अदितिके पुत्र आदित्य जो विराजमान हैं, जिनको सब जन मार्तण्ड कहते हैं, ये महातेजोमय और तापवाले हैं। इनके तेजसे तो सारा जगत, जिसमें स्थावर-जंगम सबही हैं, महा क्लेश पा रहा है। आप इस विषयकी क्यों उपेक्षा कर रहे हैं। हम सब भी अहितकी आशंकासे व्याकुल हैं और दिवि-भुवि-अन्तरिक्षमें कहीं चैन नहीं है। यह बात सुनकर कमलासनासीन ब्रह्माजी बोले कि आओ सब देवताओंके साथ हम तुम भी उन्हीं की शरणमें चलें। इसपर उदयगिरिके निकट जाकर, ब्रह्माजी सहित सब प्रार्थना करने लगे:—

हे सुरवर, हे प्रखर तेजधारी, हे प्रणतजनोंका हित करनेवाले, आपको बार-बार नमस्कार है। हे त्रिभुवन जनमनभावन, हे शुभाशुभ कर्मोंका फल देनेवाले, आपको बार-बार नमस्कार है। हे सब जनोंके भलेबुरे कर्मोंके साक्षी आपको नमस्कार है; हे सहस्र सहस्र

रश्मियोंसे प्रकाशमान प्रभो आपको नमस्कार है। हे, प्रकाश-किरणका घरवा रखनेवाले प्रशस्त सप्त-अश्वोंके रथमें विराजमान सुर्देव आपको नमस्कार है। ६० हजार बालखिल्य ऋषिगणसे घिरे हुए स्तुतियाँ सुनते हुए आप अपने रथमें विराजते हैं। ऋषिगण, गंधर्वगण, अप्सराएं, नागराजगण, सिद्धगण, यक्षगण, किन्नरगण, राक्षस पिशाचगण-यह सब आपके रथके आगे-पीछे निजनिज सेवामें नियुक्त हुए चलते हैं। हे भूतभावन आपको नमस्कार है। हे पुण्यात्माजनोंसे वंदित देव आपको नमस्कार है। आपही घर्म-हिम-जलको, अपनी किरणोंसे पैदा करके रसकी सृष्टि करते हैं-फिर आपही किरणोंसे शोषित कर लेते हैं। ये नियम मर्यादा-चलाने वाले सूर्यनारायण आपको नमस्कार है। हे महाकारुणिक नारायण प्रभो आप जड़ोंको, अंधोंको, गूँगोंको, बहरोंको, कुनटोंको सुपुष्ट और सर्वावयव-संयुक्त बना देते हैं-आपतो उन महारोगियोंको भी स्वस्थ कर देते हैं जिनके दद्रु-कुष्ट-युक्त शरीरके घावोंसे मवाद टपकता रहता है। जिसके उदरमें प्रखर ज्योति स्थित है। जो परम तेजोमय है, जो जगतका चक्षु है उसको नमस्कार है। जिसने अग्निको ताप दिया है, जिसने जलको शीतलता दी है उसको नमस्कार है। जो अनेक रूप धारण करके विश्वमें व्याप्त है उसको नमस्कार है। जिस देवके दर्शनमात्रसे देवताओंके द्वेषी राक्षसगण नष्ट हो जाते हैं, उसको नमस्कार है।

इस प्रकारसे देवताओं और ऋषियोंके साथ की गयी ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर और उनका अभिप्राय जानकर भगवानने कहा—

हे देवगण आपने मेरी भक्तिभावभरीं स्तुति की है। इससे मैं प्रसन्न हो रहा हूं। अब बताइये कि आप क्या चाहते हैं? आप जो चाहेंगे वही होगा। भगवानकी यह आज्ञा सुनकर प्रहृष्टचित्तसे सबने मन-वचन-कायासे त्वष्टाका स्मरण किया। फिर उस विश्वकर्माने, तेजोराशि जगत्पतिको भ्रमियंत्रपर चढाकर रूप निखारना आरम्भ किया। अमृतकी वर्षा करते हुए और चारणोंद्वारा स्तुतिपाठोंकी ध्वनिमें, विश्वकर्माने, भगवानका, धीरे धीरे तेज छाँटना शुरु किया। जानु सहित रूप निखरते-निखरते भगवानने कहा कि बस विश्वकर्मा अब बस करो। तबसे सूर्य भगवानके चरण महातेजोमय रह गये हैं जो ध्यान करते समय हृदयमें ताप पैदा करते हैं। विश्वकर्माने सूर्यभगवानका जो तेज छाँट लिया था उससे उसने वह चक्र-सुदर्शन बनाया जिसको लेकर पीछेसे विष्णुने उग्र दानवोंका नाश किया है। इसके अतिरिक्त इस महाशक्तिमय तेजसे त्रिशूल, महाशक्ति, गदा, चक्र, शरासन और परश्वे आदि आयुधोंकी रचना की। यह सब आयुध देवताओंको विश्वकर्माने दे दिये।

ब्रह्माजीके मुखसे निकला हुआ स्तोत्र जो जन दोनों सन्ध्याओंके समय पढते हैं वे सब व्याधियोंसे मुक्त होकर अपने कुलको पवित्र करते हैं। वे संततिवाले और सिद्धकर्मा होकर सौ वर्षतक जीते हैं। ऐसे प्राणी पुत्रवान होते हैं, धनवान होते हैं और सर्वत्र पराजय-रहित रहते हैं। अन्तमें संसारसे बिदा होकर पवित्र लोकोंमें स्थान पाते हैं।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे ब्रह्मासहित सर्व देवगणाक्त स्तोत्र नामक पचदशोऽध्याय ॥ १५॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(१६) दिण्डी और अन्य प्रवर अनुचर

देवर्षि नारद बोले कि हे श्रीकृष्णनंदन, अब हम दण्डनायक, पिंगल, राज्ञ, तोप तथा दिण्डी सहित अन्यान्य पार्षदोंकी वार्ता सुनाते हैं।

एक बार देवगणने ब्रह्माजीके निकट जाकर यह पूछा था कि सूर्यभगवान तो अतिशय करुणाकर हैं; वे प्रसन्न होकर दैत्योंको भी वरदान दे-देते हैं। वरदान पाकर दैत्य लोग देवगणको सताने लगते हैं। अतः हम लोग भगवानके आसपास इसतरह रहें कि दानव-दैत्योंकी वहाँतक पहुँचही न हो। इस विधिसे मंत्रणा करके इन्द्रदेवता सूर्य भगवानकी बाईं ओर जा खड़े हुए। वहां उनका नाम दण्डनायक हुआ। भगवान सूर्यने कहा कि आजसे तुम प्रजाके लिये दण्डनायक होगये हो। दण्डनीति तुम्हारे हाथमें रहेगी इसीसे लोग तुम्हें दण्डनायक पुकारेंगे। अग्निदेवता भगवानकी दाईं ओर जा खड़े हुए। उनको प्रजाके भले बुरे कर्म लिखते रहनेका कार्य दे दिया गया। इसलिये वहाँ नियुक्त अग्निदेवता पिंगल कहलाये। अश्विनीकुमार भी भगवानके आसपास जा खड़े हुए। घोड़ेके मुखसहित उत्पन्न होनेके कारण वे अश्विनीकुमार कहलाये हैं। भगवानके पूर्व द्वारपर महा बलवान राज्ञ और तोप जा खड़े हुए। इनमें राज्ञ वास्तवमें कार्तिकेय हैं और तोप शंकर हैं। भगवान कार्तिकेय देवताओंके सेनापति हैं। सदा देदीप्यमान

और तेजस्वी रूपमें विराजते हैं, इसीलिये उनका नाम राज्ञ हुआ। अथवा यों कहिये कि द्वारपर खड़े रहकर आनाजाना रोकते हैं, इस लिये इनके नाम राज्ञ और तोप हुए। प्रेतोंके अधिपति, कल्मापपक्षी द्वय रास्ता रोककर बैठ गये हैं। काले वर्णके होनेसे उनको कल्माप कहा जाता है। पक्ष या पंख रहनेसे गरुडही कल्माप पक्षी कहलाये हैं। दक्षिण द्वारपर जान्दकार और माठर खड़े हो गये। जान्दकार चित्रगुप्त हैं, और माठर स्वयम् कालभैरव हैं। चित्रगुप्त यमराजके कार्यमें सहायक होते हैं। अर्थ या कार्यका नाम ही जान्द कहा गया है, इसीलिये चित्रगुप्त जान्दकार भी कहलाये हैं। सदा दक्षिणमें निवास या मठ होनेसे कालभैरवको माठर कहा गया है, क्योंकि मठका अर्थ निवास ही है। अक्षय आयु प्राप्त पश्चिम–समुद्रकी ओर स्थित वरुण देवता हैं। इसीलिये उनका नाम क्षुताप भी है। सूर्यके निकट उत्तरकी ओर कुबेर देवता और श्रीगणेशजी महाराज खड़े हो गये। कुबेर धनद हैं और विनायक हस्तिरूपमें हैं। रेवन्त और दिण्डी दोनों पूर्वकी ओर खड़े हो गये। इनमें दिण्डी स्वयम् भगवान रुद्र हैं और रेवन्त सूर्यभगवानके पुत्र हैं।

ये सब सूर्यके अनुचर कहे गये हैं, कुल मिलाकर इनकी संख्या १८, है। दानवोंका प्रवेश न होने देनेके लिये ये देवतागण, निजरूपमें, अन्यरूपमें, त्रिरूपमें और कामरूपमें भगवानको घेरे रहते हैं। वेद ऋचाओंसे स्तुति करते हुए इन्होंने सूर्यसे अनेक वर पा लिये हैं।

इतना सुनाकर देवर्षि बोले कि अब हम सूर्यके प्रवर–प्रधान अनुचर दिण्डीकी कथा सुनाते हैं। व्योममें रहनेसे दिण्डीको नम

भी कहा गया है । पर वास्तवमें रुद्र ही दिण्डी हैं । एक बार रुद्रने ब्रह्म-शिर काट लिया था; फिर उसका कपाल लेकर रुद्र बहुतसे फूलोंसे सुवासित, फलोंसे भरे हुए और जलाशयोंवाले देवदारुके वनमें नग्नावस्थामें ही जा पहुंचे। वहां ऋषि पत्नियां उनको देखकर विमोहित होगयीं। वे पागल होकर इस नंगे भिखारीके पीछे इसतरह दौड़ पड़ीं कि उनको शरीर और वस्त्रोंकी भी सुध न रही। अपनी माताओं, बहनों, पुत्रियों और पत्नियोंको इस प्रकार पागल बना हुआ देखा तो समस्त ऋषिमुनिगण कोपाविष्ट होकर शंकरको मारने पीटने लगे, कोई लकडियोंसे पिलपड़ा तो कोई पत्थरोंसे मारने लगा। कुछ कालोपरान्त वहांसे रुद्र सूर्यलोक चले गये। सूर्यलोकमें भगवानके अनुचरोंने रुद्रसे पूछा कि हे देवेश आप इस वेशमें किस लिये घूमते फिर रहे हैं । रुद्रने उत्तर दिया कि मैं ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेके लिये तीर्थों, देवालयों और देवोंके द्वारोंपर भटकता फिरता हूं। इस पर अनुचरोंने कहा कि अब आप यहीं सूर्यके निकट रहिये। यहीं भगवान आपको शुद्ध कर देंगे, फिर शुद्ध स्वरूपसे आप अपने लोकको पधारियेगा । अनुचरोंसे इतना सुनकर रुद्र भगवान विश्वेशके पास ही रह गये। नङ्गे, जटाएं बढाये हुए, लट्ठधारी, हाथमें कपाल लिये हुए, त्रिलोकीमें इस अप्रतिम रूपमें रुद्र वहीं रह पड़े। सूर्यलोकमें रहकर उन्होंने भगवानकी स्तुति की तो वह बहुत प्रसन्न होगये। प्रसन्न होकर सूर्यभगवानने कहा कि मैं वाक्यामृतोंसे बहुत प्रसन्न होगया हूं, जाइये

अब आप मेरे दर्शन मात्रसेही महापातकसे छूट गये हैं। भविष्यमें आप तीनों लोकोंमें दिण्डी नामसे प्रख्यात होंगे। आप अब अपने स्थानको पधारिये, आप तो अबसे अतीव पुण्यात्मा और पापोंका नाश करनेवाले होगये हैं। आप अब कपाल रखना छोड़ दीजिये और विशुद्ध स्वरूपसे यहीं मेरे साथ निवास कीजिये। इस रूपमें सूर्यके १८ प्रवर अनुचर हैं, इनके सिवा १४ अनुचर और भी हैं। इनमें दो देवता, दो ऋषि, दो गन्धर्व, दो नाग, दो यक्ष, दो निशाचर और दो अप्सराएं हैं।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे अनुचरप्रवर दिण्डी चरित
वर्णन नामक षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(१७) महापापमोचन स्तोत्र

देवर्षि नारदने, इतनी कथा सुनाकर कहा हे सांब, वह महास्तोत्र भी सुनो जो दिण्डीने सूर्यकी प्रसन्नताके लिये रचा था और जिस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर सूर्यने दिण्डीको ब्रह्महत्याके पापसे विनिर्मुक्त किया था।

मैं, सब पापोंका नाश करनेवाले, सूर्यभगवानकी शरणमें भक्ति-भावसे आया हूं। जो सूर्य भगवानही देव-दानव-यक्ष ग्रहगण और नक्षत्रोंके स्वामी है, जो तेजोंका भी परम तेज हैं, मैं उन्हींकी शरणमें आया हूं।

इतना कहते ही निरुपाक्ष ध्यानावस्थित हो गये। और अन्तरजगतमें सूर्यनारायणकी स्तुति करने लगे। वे अन्तरा-त्मासे बोले:—

जो दिवमें स्थित हैं, जो सहस्र सहस्र रश्मियोंवाले हैं, जो दशों दिशाओंमें पर्व्याप्त हैं, जो वसुधा तथा अन्तरिक्षमें भी स्थित हैं, उन आदित्यकी सूर्यकी भास्करकी सविताकी दिवाकरकी -पूषाकी—अर्यमाकी-स्वर्भानुकी-प्रदीप्ततेजधारी भगवानकी मैं शरण हूं। जो चारों युगोंकी रचनेवाले हैं और उनका नाश करनेवाले भी हैं, जो कालाग्नि भी हैं और प्रलयंकर भी हैं, मैं उनकी शरण हूं।

जो योगियोंके ध्येय हैं, जो अनन्त हैं, जो रक्त-पीत-श्वेत-हरित रङ्गोंवाले होकर ऋषियोंके अग्निहोत्र और यज्ञोंमें अवस्थित रहते हैं, मैं उनकी शरणमें हूं।

हे सूर्य नारायण आपही ब्रह्मा हैं, आपही महादेव हैं, आपही विष्णु हैं और आपही प्रजापति हैं। वायु-आकाश-जल-पृथिवी-पर्वत-सागर-ग्रह-नक्षत्र-चन्द्र-और सूर्यग्रह आपही हैं। वनकी औषधियोंमें भी आपकी ही शक्ति है। आप जड़-चेतन सबमें व्याप्त रहकर धर्माधर्मका प्रवर्तन-नियमन-स्थापन करते हैं।

हे प्रभो! आपके दर्शनमात्रसेही, मैं, आज ब्रह्महत्याके पापसे छूट गया हूँ।

ज्ञानचक्षुओंसे, आज, मुझे आपके दिव्य तेजोराशिपूर्ण स्वरूप का दर्शन हो रहा है। आपही अपनी किरणोंसे जगतको रचते और धारण करते हैं—आज इसी विभूतिका मैं दर्शन पा रहा हूं। आपको बार-बार प्रणाम है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे महापाप विमोचन माहेश्वर स्तोत्र नामक सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(१८) महा व्योमकी उत्पत्ति

साम्बको इतनी कथा श्रवण कराकर देवर्षि बोले कि हे यदु-नन्दन, अब हम तुझे व्योमकी उत्पत्तिकी कथा सुनाते हैं जो हिरण्यगर्भ नामक महा अण्डेसे पैदा हुआ है। महा अण्डेके फूटनेपर ऊपरके भागसे व्योम और नीचेके भागसे भूमि उत्पन्न हुई। तब काञ्चन वर्णका चार चोटियोंवाला मेरु पर्वत उससे पैदा हुआ जो देवताओंका संश्रय है। कमलके ४ पत्रोंके समान पृथ्वी है, उसकी कर्णिका सुमेरु पर्वत है। दोनों पर्वतोंतक विस्तृत धुरेपर आश्रित रथमें बैठकर सूर्यदेव मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हैं। सब देवगण उनको घेरे हुए चलते हैं। इस मेरु पर्वतमेंही ३३ कोटि देवता बसते हैं। इन देवताओंमें एकादश (११) रुद्र हैं, द्वादश (१२) आदित्य हैं, अष्ट (८) वसु हैं, दो अश्विनीकुमार हैं।

वसु पितर संज्ञक हैं, रुद्र पितामह संज्ञक और आदित्य प्रपितामह संज्ञक हैं। अश्विनीकुमार आत्मतनु हैं। अब ऋतु संवत्सरात्मक पितरोंका हाल सुनिये जो यज्ञभागके भोक्ता हैं।

ग्यारह रुद्रोंके नाम ये हैं:—१ अज, २ एकपाद, ३ सूघा, ४ रुद्र, ५ हर, ६ शर्व, ७ त्र्यम्बक, ८ वृषाकपि ९ शम्भु, १० कपर्दी और ११ रैवत।

द्वादश आदित्योंके नाम ये हैं:—१ विष्णु २ शक्र अथवा इन्द्र, ३ अर्यमा, ४ धाता, ५ मित्र, ६ वरुण, ७ विवस्वान, ८ सविता, ९ पूषा, १० त्वष्टा ११ अंशुमान और २२ भग।

आठ वसुओंके नाम ये हैं:–१ धर, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ आप, ५ अनिल, ६ अनल, ७ प्रत्यूष, ८ प्रभात।

अश्विनी कुमारोंके नाम ये हैं:–१ नासत्य, २ दस्र।

अब विश्वेदेवाओंके नाम आदि सुनाते हैं। १ क्रतु, २ दक्ष, ३ वसु, ४ सत्य, ५ काल, ६ काम, ७ धुरि, ८ लोचन, ९ आर्द्रव १० पुरूरव।

वर्तमान मन्वन्तरकी यही बात है। इसके पहले मन्वन्तरमें १ याम्या, २ तुषिता, ४ वशवर्ती, ४ सत्या, ५ भूतरज और ६ साया। इस प्रकार इन सब श्रेणियोंके १२।१२ देवता थे।

मनु, अनुमन्ता, प्राण, नर, नारायण, वृत्ति, तप, हय, हंस धर्म, विभु और प्रभु इन १२ देवताओंकी साध्य श्रेणी है। ये यज्ञमें भाग पानेवाले देवता यज्ञमें विद्यमान रहते हैं।

अब फिर वर्त्तमान देवताओंकी बात बताता हूँ। १ आदित्य (बारह) २ मरुत, ३ रुद्र (ग्यारह), ४ विश्वेदेवा, ५ वसुगण, ये देवता साध्य कहलाते हैं।

अब इन्द्रोंके और मनुओंके नाम तुझे बताता हूँ:—१ स्वायम्भुव, २ स्वारोचिष, ३ औत्तमी, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष, ७ वैवस्वत। इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इसके आगे ७ मनु और भी होंगे, जिनके नाम ये हैं—१ अर्कसावर्णि,

२ ब्रह्मसावर्णि, ३ भवसावर्णि, ४ धर्मसावर्णि, ५ दक्षसावर्णि, ६ रौत्य और ७ भौत्य ।

इन्द्रोंके नाम ये हैं :— १ विष्णु, २ विपश्चित्त, ३ अद्भुत, ४ त्रिदिव, ५ सुशान्ति, ६ सुकीर्ति, ७ ऋतुधामा, ८ दिवस्पति। ये इन्द्र हो चुके हैं। आगे १४ इन्द्र और भी होंगे।

सात ऋषियोंके नाम ये हैं :—१ कश्यप, २, अत्रि, ३ वसिष्ठ, ४ भरद्वाज, ५ गौतम, ६ विश्वामित्र, ७ जमदग्नि।

अब मरुद्गणोंकी, अग्निदेवताकी और पितरोंकी बात सुनो।

मरुद्गणोंके नाम ये हैं :—१ प्रवह, २ अवह, ३ उद्वह, ४ सुवह, ५ विवह, ६ निवह, ७ परिवह। यह अन्तरिक्षचारी मरुद्गण अपने अपने पथमें विचरते हैं।

अग्निदेवताओंके नाम ये हैं :— १ शौराग्नि, २ शुचि, ३ विद्युताग्नि, ४ पावक, ५ निर्मथ्य।

अग्निदेवके १०४ पुत्रपौत्रादि हैं। मरुतगणोंके भी सात-सात पुत्रपौत्रादि हैं। अग्निके संवत्सर और ऋतु पुत्र हुए। ऋतुके पुत्रोंके नाम आर्तव और पांच सर्ग हैं।

संवत्सरोंके सुनाम ये हैं:— १ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इड्वत्सर, ४ अनुवत्सर, ५ वत्सर। इनमें अनुवत्सर वायुदेवता है, संवत्सरही अग्नि है, परिवत्सरही सूर्य है। इड्वत्सर चन्द्र है, वत्सर ही रुद्र है।

ऋतुके पुत्र आर्तवको पिता समझना चाहिये। ऋतु पितामह हैं, महीने सोम (चन्द्र) के पुत्र हैं। अथवा ऋतुएं प्रपितामह हैं।

१ सौम्या, २ बर्हिषद, ३ अग्निष्वात्ता, ये ब्रह्माके पुत्र पितर हैं

१ सूर्य, २ चन्द्र, ३ मंगल, ४ बुध, ५ बृहस्पति, ६ शुक्र, ७ शनैश्वर, ८ राहु और ९ धूम्र केतु, ये नवग्रह हैं। ये तीनों लोकमें भावाभावके निवेदक हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र मण्डलग्रह कहलाते हैं। राहु छायाग्रह है। शेष ग्रह ताराग्रह मात्र हैं।

चन्द्र नक्षत्रोंका अधिपति है, दिवाकर ग्रहोंका राजा है।

आदित्य मानो अग्निही है– चन्द्र मानो अमीही है।

आदित्य मानो ब्रह्माही है, चन्द्रमा मानो विष्णु स्वरूपही है। मङ्गल महेश स्वरूप है।

सूर्य कश्यपके पुत्र हैं, चन्द्र धर्मका पुत्र है। अन्य दो प्रकाशमान महाग्रहोंमें एक देवगुरु बृहस्पति हैं और दूसरे दैत्यगुरु शुक्र हैं। बृहस्पति और शुक्र दोनों प्रजापतिके पुत्र हैं। बुध चन्द्र का पुत्र है। शनैश्वर सूर्यका श्रीमान पुत्र है। केतु सिंहका और राहु ब्रह्माका पुत्र है।

सूर्य सब ग्रहोंमें निम्न क्रमसे विचरते हैं। सूर्यके अधरसे चन्द्र विचरता है। उससे ऊपर नक्षत्र मण्डल है। इन सबसे ऊपर शनिश्वरका भ्रमणपथ है। उससे भी ऊपर ऋषि मण्डल है। सप्तऋषि मंडलसे भी ऊपर ध्रुव है, यह विज्ञजनोंका कथन है। राहु आदित्य मण्डलमें रहता है, कभीकभी चन्द्रमण्डलके पथमें जा निकलता है। पर केतु सूर्य मण्डलमें रहता हुआ नित्यही प्रसर्पित होता है। सूर्यका विस्तार ९००० योजन है। इसके मण्डलकी परिधिका

विस्तार इससे त्रिगुणित है। चन्द्रका विस्तार सूर्यके विस्तारसे द्विगुणित कहा गया है। सूर्यकी भांति चन्द्रके मण्डलकी परिधिका विस्तार भी अपने मूलविस्तारसे त्रिगुणित है। शुक्रका विस्तार चन्द्रके विस्तारका सोलहवां अंश है। बृहस्पतिका विस्तार शुक्रके विस्तारसे एक पाद कम है। बृहस्पतिसे एक पाद कम मंगलको कहा गया है। मण्डलमें इनसे बुध एक अंश कम है। अन्य मण्डलोंकी कमीका क्रम भी बुधके मण्डलके समानही समझना चाहिये। इनमें अर्ध-योजनका भी अन्तर नहीं है। राहू सूर्यके प्रमाणानुसार है और केतु कदाचित राहूके प्रमाणपथपर है।

सात लोक हैं जिनके नाम १ भूलोक, २ भुवःलोक, ३ स्वःलोक ४ महःलोक, ५ जनःलोक ६ तपःलोक, ७ सत्यलोक हैं।

भूलोक पार्थिव लोक है। भुवः लोक अन्तरिक्षमें है। स्वःलोकादि आकाशमें क्रमशः एक दूसरेसे ऊपर स्थित हैं। भूका अधिपति अग्नि है, अतः उसको भूतिपति कहा गया है। आकाशका अधिपति वायु है अतः उसको नभस्पति कहते हैं। उसके ऊपरके भागको दिवि कहते हैं और उसका अधिपति सूर्य है, इस लिये सूर्यको दिवस्पति कहते हैं। गन्धर्व, अप्सराएं, गुह्यका और राक्षस योनिवाले जीव भूलोक वासीही हैं, पर वे अन्तरिक्षमें भी भ्रमण करते हैं। मरुद्गण, स्कंध, रुद्र और अश्विनीकुमार अन्तरिक्ष अर्थात भुवः लोकमें रहते हैं। आदित्यगण और वसुगण स्वर्लोकमें रहते हैं, यहीं देवगणका भी निवास है। चौथे नम्बरके महलोकमें कल्पवासी सिद्धजन रहते हैं। पांचवें जन लोकमें प्रजापतियोंका

निवास है। सातवां सत्यलोक है जहां मनु, सनत्कुमार आदि और तपस्वी महाराजादि स्थान पाते हैं। महीतलसे सौ हजार योजन ऊपर सूर्यलोक है जो ब्रह्मलोक कहलाता है और जहाँ पहुँचकर पुनः जन्ममरण नहीं होता है। ध्रुवलोक भूमिसे १० करोड योजन ऊपर है। तीनों लोकोंकी धुरी २३ लाख योजनकी है। २६००० सौ योजनकी दूरी, ध्रुवसे ऊपर, प्रत्येक लोकके बीचमें है। देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, भूत, विद्याधर यह आठ देवयोनिमें हैं। ये व्योम स्थित सातों लोकमें रहते हैं। मरुद्गण, पितरगण, अग्नि और ग्रहादि और पहले कहे गये आठ देवयोनिवाले, ये सब समूर्त या अमूर्त व्योममें स्थित लोकोंमें रहते हैं, इस प्रकार इस व्योमको सर्व-देवमय, शास्त्रोंमें, कहा गया है। यह व्योम सर्वभूतमय और सर्वश्रुतिमय भी है। अतः जिसने व्योमकी अर्चना की, मानो उसने सब देवताओंकी अर्चना करली। इसी लिये शुभ चाहनेवालोंको प्रयत्नके साथ व्योमकी पूजा करनी उचित है।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे देवताख्यायन नामक अष्टादशोऽध्याय ॥ १८॥

ॐश्रीसिद्धगणेशायनमः

(१९) आकाशकी उत्पत्ति

देवर्षि बोले कि हे साम्ब, आकाशके इतने नाम हैं:—

१ आकाश, २ खम, ३ वियद, ४ व्योम, ५ अन्तरिक्ष, ६ नभ, ६ अम्बर, ८ पुष्कर, ९ गगन, १० मेरु। मेरु और भूमिके मध्यमें मेदिनी है। इसके पश्चात् भूमिका द्वीप विभाग कहता हूँ उसको भी सुन! १ जम्बूद्वीप २ शाकद्वीप, ३ कुशद्वीप, ४ क्रौंचद्वीप, ५ गोमेदद्वीप, ६ शाल्मलीद्वीप और ७ पुष्करद्वीप। इसप्रकार भूमि सात महाद्वीपोंमें विभाजित है। लवण, क्षीर, दही, जल, घृत इक्षुरस और शहद नामवाले ७ महासमुद्र हैं। हिमवान, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृंगवान, यह ६ वर्ष पर्वत हैं। सातवा मानस पर्वत है। इनपर ८ महापुरिया वसी हुई हैं, माहेन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, सौम्या, वायवी और ऐशानी—यह नाम इन ८ महापुरियोंके हैं। मानससे निर्जल भूमि और फिर लोकालोक पर्वत है। फिर ब्रह्माण्डका कपालभाग है। इसके ऊपर अन्धकार है। फिर अग्नि, वायु, आकाशादि पाच महाभूत हैं। उनसे ऊपर प्रकृति और पुरुष हैं। पुरुषका अर्थ ईश्वर समझना चाहिये, ईश्वरनेही जगतको आवृत कर रखा है — ऊपर, बीचमें और नीचेके तीन भागोंकी वात पहले मैं कह चुका हूँ। अब इस विषयमें विस्तारमें फिर कहता हूँ, क्योंकि ब्रह्माण्डका प्रकरण छिड़

गया है। भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यं यह सात लोक ऊपरकी ओर हैं। इनसे ऊपर अण्डका कपालभाग है जिससे आगे घोर अन्धकार है। इनसे आगे वही अग्नि-वायु–आकाशादि पांच महाभूत हैं। फिर महान्प्रधान प्रकृति और पुरुष हैं। पुरुषका अर्थ ईश्वर है। ईश्वरनेही जगतको आवृत कर रखा है। भूमिसे नीचे भी सात पाताल लोक हैं। तल, सुतल, तलातल, पाताल, तमस्ताल, सुशाल और विशाल, यह सात लोक नीचे हैं। इनके बाद फिर वही ब्रह्माण्डके कपालका निचला भाग आ जाता है। फिर यही अग्नि, वायु, आकाशादि पंचमहाभूत, महान् प्रधान, प्रकृति और पुरुष आजाते हैं। पुरुषका अर्थ ईश्वर है और ईश्वरनेही जगतको आवृत्त कर रखा है। इस प्रकारसे सुमेरु पर्वतसे भूमितक जो कुछ है उसका सम्पूर्ण वृतान्त सुना दिया है। सुमेरु पर्वत शुद्ध काञ्चनमय ४ महाशृंगोंवाला है। यह, ४ शृंग पृथिवी और आकाशके बीचमें स्थित हैं जिनपर सिद्धों और गन्धर्वोंका निवास है। सुमेरु ८४००० योजन ऊपर है। नीचे १६००० योजन घंसा हुआ है। इस विस्तारसे त्रिगुणित इसका परिणाह है। चार शृंगमें पहला शृंग स्वर्णमय है जो सौमनस कहलाता है। दूसरा शृंग पद्मरागमणिकी आभावाला है; इसको ज्योतिष्क पर्वत कहा गया है। तीसरे शृंगका नाम चित्र है जो सर्व धातुमय है। चौथा शृंग चांद्रमास है जो शुद्ध चांदीके समान है। सुमेरु पर्वतका सौमनस नामक जो शृंग है उससे जम्बू नदीकी उत्पत्ति कही गयी है। वहां उदय नामक

गिरी है जहाँ सूर्य उदय होता हुआ दिखायी देता है। उत्तरमें परिक्रमण करनेके पश्चात् जब सूर्य भगवान जम्बू द्वीपमें प्रकट होते हैं तो पहले इसी पर्वतपर उनका प्रकाश होता है। यह काञ्चनमय शैल सूर्यके प्रकाशसे आवृत होता है। दोनों सन्ध्याओंको पूर्व और पश्चिमसे यह प्रकाशित होता है। सोमनस शृंगपर सूर्य उत्तरायण जाते हुए पहुंचते हैं। ज्योतिष्क शृंगपर दक्षिणायनमें होते समय सूर्यभगवान उदय होते हैं। विपनतरेखा और मध्य मार्गपर रहते हुए चौथे पर्वत शृंगसे सूर्यभगवान उदय होते हैं। इससे पूर्वोत्तरमें ईशान, पूर्वदक्षिणमें अग्नि, दक्षिण पश्चिममें नैर्ऋत और पश्चिमोत्तरमें वायव्य दिशाएँ हैं। ईशानमें इंद्र, अग्नि कोणमें अग्निदेवता, नैर्ऋतमें पितर और वायव्य कोणमें मरूत्तगणका निवास है। इनके मध्यमें, आकाश पथमें, पूर्ण ज्योति सहित, अपने निजी रूपमें साक्षात सूर्यनारायण रहते हैं।

इति श्री हिन्दी साम्वपुराणे व्योमोत्पत्ति—
नौमैकोनविंशोऽध्याय १९

॰ॐसिद्धगणेशायनमः

(२०) लोकों और लोकपालों द्वारा पूजन

इतनी कथा सुनाकर नारदजी बोले कि हे साम्ब अब उन चारों लोकपालोंकी पुरियोंका हाल सुनो जो इस सुवर्णमय मेरु पर्वतकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं। प्राची (पूर्व) दिशामें इन्द्र देवताकी अमरावती पुरी है। दक्षिणमें अर्यमाकी संयमनी पुरी है। पश्चिममें वरुणकी सुखापुरी है और उत्तर दिशामें सोमदेवकी विभापुरी है। उदय होते होते, अस्त होते होते, दोपहरीको और मध्यरात्रिको सूर्यभगवान इन पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। दो प्रहरको जब भगवान अमरावती पुरीको प्रकाशित करते हैं तो संयमनी पुरीमें विदित होता है कि सूर्य उदयही हो रहे हैं। सुखापुरीमें अर्धरात्रि होती है और विभापुरीमें सूर्यास्तका समय होता है। जब सूर्यभगवान अर्यमाकी संयमनी पुरीमें अपने प्रकाशसे दोप्रहरी करते हैं तब सुखापुरीमें केवल सूर्योदय काल दिखायी पड़ता है। विभापुरीमें अर्धरात्रि रहती है और इन्द्रकी अमरावतीपूरीमें सूर्यास्त काल होता है। वरुण देवताकी सुखापुरीमें जब मध्यान्हकाल रहता है तो सोम देवताकी विभापुरीमें केवल उदयकाल होता है, अमरावतीमें अर्ध-रात्रि और संयमनीमें सन्ध्याकाल रहता है। जिस समय वरुणकी सुखापुरीमें मध्यान्हकाल होता है उसी समय सोमकी विभापुरीमें प्रातःकाल, अमरावतीमें अर्धरात्रिकाल और संयमनीपुरीमें संध्या-

काल रहता है। जब सोमकी विभापुरीमें मध्याह्नकाल होता है, तब इंद्रकी अमरावतीमें प्रात काल, यमकी संयमनीपुरीमें अर्धरात्रि और वरुणकी सुखापुरीमें सध्याकाल रहता है। इस प्रकार सूर्य सुमेरु पर्वतकी चारों दिशाओंमें प्रदक्षिणा–पूर्वक प्रकाश करते रहते हैं और पुनः पुनः उदय तथा अस्त होते हुए दिखायी देते हैं। पूर्वान्ह और अपरान्हमें सूर्य दो दो पुरियोंको प्रकाश देते हैं। मध्यान्हमें एक पुरीको प्रकाशित करते हैं। उदयकालमें आभा बढती हुई रहती है, मध्यान्हमें प्रखरतम और अस्तकालमें धीमी पडती हुई। जब सूर्य निकलते हुए दिखाई देते हैं तो उदय हुए कहे जाते हैं, जब छिपते हुए दिखाई पडते हैं तब अस्त हुए कहलाते हैं। सूर्य जब दूर तथा परे निकल जाते हैं और सूर्यका प्रकाश भूमिपर नहीं पडता तो किरणें लुप्त हो जाती हैं। इसीको रात्रि कहते हैं। लेखामें स्थित सूर्य जहा जहा दिखाई देते हैं, वहासे १० लाख योजन ऊपरतक प्रकाश रहता है। जब पुष्करके मध्यमें भास्कर होते हैं तब उनका प्रकाश प्रति मुहूर्त मेदिनीके ३० वें भागमे पड़ता है। २२०० योजन प्रतिपल सूर्यकी गति है।

उदय होते समय नित्य इन्द्र देवता सूर्यकी पूजा करते हैं। मध्यान्हकालमें धर्मराज पूजन करते हैं, सोम अर्द्धरात्रिको, कुबेर देवता सायंकाल सूर्यकी पूजा करते हैं।

रात्रिका अवसान होते होते ब्रह्मा, विष्णु, और शिव सूर्यकी पूजा करते हैं। इसीप्रकारसे अग्नि, निर्ऋत, वायु और ईशान भी क्रमशः सूर्यका पूजन करते हैं।

इतिश्री हिन्दी साम्बपुराणे सर्व देवस्य सूर्य पूजनकाल नामक विंशतितमोऽध्याय ॥ २० ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(२१) सूर्यनारायणका रथ

देवर्पि नारद बोले कि अब हम सूर्यके रथकी कथा कहते हैं। इस रथमें एकही चक्र है। इस चक्रकी धुरीमें पांच अरे लगे हुए हैं। प्रति निमि अष्टचर्मके हिसाबसे हिरण्मय कान्तियुक्त सूर्यका रथचक्र चलता है। इस चक्रका विस्तार ९००० योजन है। इस रथका इपादण्ड या धुरा इस लिखित परिमाणसे दुगना है। रथके सारथीका नाम अरुण है। उस परब्रह्मने इस रथकी रचना संवत्सरात्मक रूपमें की है। इसमें शुद्ध कांचनमय सात घोड़े जुते हैं, जो वेदोंके छन्द स्वरूप हैं। यही आकाशमें सूर्यके रथको लेकर दौड़ते हैं। सूर्यके रथके प्रत्येक अङ्गकी रचना संवत्सरात्मक रूपमें इस क्रमसे हुई है। चक्रकी तीन नाभियां हैं जो वास्तवमें तीनों (भूत, भविष्यत, वर्तमान) काल हैं। पांच अरे संवत्सर हैं, निमि छहों ऋतुओंकी ही निदर्शक हैं। इसकी दो उर्बियाँ हैं जो उत्तरायण और दक्षिणायन रूपमें हैं। मुहूर्त वंधुरा है, सव्यकला हैं, घोण काष्ठा मात्र हैं, अक्षदण्डही क्षण हैं। निमेप अनुकक्षा हैं और इसके लवा वेदोपनिपदोंमें ईपा कहे गये हैं। दो नाभि-धनु हैं जो धर्म और युग हैं। दोनों अर्थ और कामके देनेवाले हैं। १ गायत्री, २ त्रिष्टुप, ३ जगती, ४ अनुष्टुव, ५ पंक्ति, ६ बृहती और ७ उष्णिक—यह सातों वेदछन्दही सूर्यके रथके सात घोडोंके रूपमें हैं। चक्र अक्षसे जुड़ा हुआ है और

अक्ष धुरेसे। चक्र सहित अक्षदण्ड घूमता है और धुरा अक्षदण्डके साथ घूमता है।

इस प्रकारके सार्थ रथमें विराजमान सूर्यभगवान व्योममें भ्रमण करते हैं। एक बार जोता हुआ रथ १ करोड़ युगों पर्यन्त चलता रहता है।

सूर्यके रथमें, दोदोमहीनेतक, जुदेजुदे देवता, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राक्षस नियोजित रहते हैं।

वसन्तऋतुमें, (मधु और माधवमासमें) सूर्यदेव धाता और अर्यमाके रूपमें रथमें विराजते हैं। पुलस्त्य और पुलह ऋषि, प्रजापति और वासुकी नामराज, तुम्बुरु और नारद नामक गन्धर्व, कृतस्थलि और पुंजिकस्थला आप्सराएं, रथप्रत्स्न और रथौजा नामक यक्ष, हेति तथा प्रहेति यातुधान सूर्यभगवानके रथके साथ रहते हैं।

ग्रीष्मकालके दोनों मासोंमें मित्र और वरुण नामक आदित्य रथमें विराजते हैं। अत्रि तथा वसिष्ठ ऋषि, तक्षक तथा अनन्त नागराज, मेनका तथा सहजन्या अप्सराएं, हाह तथा हूहू गन्धर्व, रथचित्र तथा रथस्वन यक्ष, पौरुषेय तथा अवध्य नामक यातुधान, यह गण रथमें साथ रहते हैं।

श्रावण और भादों मासमें इन्द्र और विवस्वान रूपमें आदित्य अपने रथमें विराजते हैं। अंगिरा तथा भृगु ऋषि, एलापत्र तथा शंखपाल नागराज, विश्वावसु तथा उग्रसेन गन्धर्व, श्रोता तथा

असमस्थ यक्ष, प्रम्लोचना तथा अनुम्लोचना अप्सराएं और सर्प तथा व्याघ्र नामक राक्षस रथके साथ रहते हैं।

क्वार और कार्तिकमें सूर्य पर्जन्य तथा पूषा रूपमें विराजते हैं। भारद्वाज तथा गौतमऋषि, चित्रसेन तथा वसुरुचि नामक गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची अप्सराएं, एरावत तथा धनंजय नागराज, सेनाजित तथा सुषेण नामक यक्ष (ग्रामणी) और आप तथा वात नामक राक्षस रथके साथ रहते हैं।

अग्रहायण और पौषमें अंशुमान और भग नामसे आदित्य अपने रथमें विराजते हैं। कश्यप तथा ऋतु ऋषि, महापद्म तथा कर्कोटक नागराज, चित्रांगद तथा ऊर्णायु गन्धर्व, अपस्फूर्ज तथा विद्युत नामक राक्षस, और तार्क्ष्य तथा अरिष्टनेमि यक्ष साथमें रहते हैं।

माघ तथा फाल्गुनमें त्वष्टा और विष्णु रूपमें सूर्य भगवान रथमें विराजते हैं। जमदग्नि तथा विश्वामित्र नामक ऋषि, कंबल तथा अश्वतर नागराज, धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्चा गन्धर्व, तिलोत्तमा तथा रम्भा नामक अप्सराएँ, ऋतुजित तथा सत्यजित यक्ष और ब्रह्म-प्रेत तथा यक्षप्रेत नामक राक्षस आदि सूर्यके रथके साथ रहते हैं।

महातेजोमय सूर्यभगवानको ये सब रिझाते चलते हैं। प्रथित-प्रशस्तियोंसे ऋषिगण स्तुति करते रहते हैं। गन्धर्वगण और अप्स-राएँ गीत और नृत्यसे रिझाते हैं। यक्ष आदि प्रदक्षिणा करते हैं। नागराज सूर्यके रथका भार वहन करते हैं। राक्षस रथकी रक्षाके लिये

उद्यत रहते हैं। बालखिल्य ऋषि समुदाय दयार्द्र भगवानको चारों ओरसे घेरे हुए चलते हैं।

इन देवयोनि गणोंमें जो जितना वीर्यवान है, जिसका जितना तप है, जिसमें जितनी योग्यता है, जिसमें जितना तत्व है, जिसमें जितना सत्त्व है और जिसमें जितना बल है उसके अनुसार वह तपता है, बरसता है, चलता है, चमकता है और रचना कार्य करता है। प्राणियोंको भलेबुरे कर्मोंका यही फल देते हैं। इनकी सहायसेही सूर्य परिभ्रमण करता हुआ, प्रजाको तपाता है, जपाता है और आह्लादित करता है। इनके साथही सूर्य प्रजाकी रक्षा करता है। स्थानाभिमानी ये देवतादि अपने २ स्थानपर एकएक मन्वन्तरतक रहते हैं। इस मन्वन्तरमें यही उपर्युक्त देवर्षि—यक्ष—गन्धर्वादि सूर्यके साथ रहते हैं। पहले मन्वन्तरोंमें दूसरे रहते थे। यही सूर्यके अनुचर ग्रीष्ममें गर्मी और धूप देते हैं, वर्षाऋतुमें पानी बरसाते हैं और शरतकालमें ठण्ड तथा बर्फ देते हैं। इन्हीं सबके सहित आवृत हुए सूर्य भगवान देवगणको, पितरगणको और मनुष्योंको अपनी रश्मियोंसे तृप्त करते हैं। सूर्यदेव चन्द्रको अपनी सुषुम्ना-किरणोंसे शुक्लपक्षमें पोषित करते हैं, फिर कृष्णपक्षमें देवगण चन्द्रदेवकी रश्मियोंके अमृतको पान करते हैं। इसतरह चन्द्रदेवकी आभा घटती चली जाती है। अन्तिम दिन अमावस्याको पितरगण बची हुई रश्मिके अमृतको पान करते हैं। फिर शुक्लपक्ष आता है और क्षीण हुए चन्द्रको पुनः सूर्य भगवानसे प्रकाश मिलता है और पूर्णिमाको पुनः चन्द्रदेव पूर्णता

और परिपुष्टि प्राप्त कर लेते हैं। अन्तिम दिन अमावस्याको ही सर्पों सौम्यों और कव्योंको अमृत मिलता है। सूर्यकिरणोंके अमृतसे पुनः पुनः परिपूर्णता पाता हुआ चन्द्र वृष्टिद्वारा जल और जलसे परिपुष्ट औषधियों तथा अन्नोंको सुधा पिलाता है और इनसे मनुष्यादि प्राणियोंको प्राणवान बनाता है। इसी रीतिसे सहस्रशः रश्मियों द्वारा सूर्य जो जल खींचते हैं उसीको पुनः वर्षाके रूपमें देते हैं और स्वयम् अन्न प्रदान करके मर्त्य-लोकके प्राणियोंको जीवनदान करते हैं। इस रीतिसे सूर्य भगवान देवताओंकी पाक्षिक, पितरोंकी मासिक और प्राणियोंकी नित्यशः तृप्ति करते हैं। हरित रंगके ७ घोड़ोंके रथमें बैठे हुए भ्रमण करते समय रश्मियोंसे जो जल खींचते हैं उसीको समयपर वर्षा करके जीवोंको, सूर्यनारायण, अन्न प्रदान करते हैं। एक रात दिनमें (२४ घण्टोंमें) सूर्यनारायणका रथ पृथ्वीके सातों द्वीप और सातों समुद्रोंको शीघ्रतासे पार कर लेता है। ब्रह्मवादियोंसे गीयमान सूर्यनारायण इसतरह वेद-छंद-स्वरूप सप्त-घोड़ेके रथमें बैठकर अपने मण्डलमें एक चक्कर ३६०॥ दिनमें लगा लेते हैं। कल्पके आरम्भमें ये घोडे एकबार रथमें नियुक्त होनेपर कल्पान्ततक रात दिनमें बिना थके हुए चलते रहते हैं। रथको (६०,०००) बाल खिल्यऋषिगण घेरे रहते हैं। ऋषि साथमें वेदमंत्रोंसे स्तुति करते चलते हैं। गंधर्व गायन सुनाते हैं और अप्सराएं नृत्य दिखाती रहती हैं।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे आदित्य रथ वर्णन
नामक एकविंशोऽध्याय ॥२१॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(२२) चन्द्रकी वृद्धि और क्षयकी कथा

यह कथा सुनकर साम्बने फिर पूछा कि महाराज, आपने सूर्य लोकमें सूर्य और चन्द्र दोनोंकोही देखा था। कृपापूर्वक यह बताइये कि चन्द्रमा नित्यनित्य किस तरह क्षीण होता जाता है, और फिर नित्य नित्य किस प्रकार पुष्ट होता चला जाता है। हे सुव्रत देवर्षिजी, किस रीतिसे सोमका रस या उसके अमृतकण देवता और पितरगण पीते हैं, यह विषय मुझे समझाकर सुनाइये।

देवर्षि नारदने साम्बका प्रश्न सुनकर कहा कि हे यदुनंदन, जिस दिन चंद्रमा पूर्णताको प्राप्त होता है उस दिनको पौर्णिमा या पूनम कहते है। और जिस दिन चद्रमाकी किरणें क्षीणतम होजाती हैं उस दिनको अमावस्या कहते हैं। अमा सूर्यका नाम हैं। अमावस्याके दिन चद्रमा, क्षीणप्रभा होकर सूर्यमण्डलमें पुनः प्रभा प्राप्तिका श्रीगणेश करता है इसी लिये उस दिनका नाम अमावस्या है। उसी दिन सूर्यकी सन्निधिमें चन्द्रमाभी विद्यमान देखा जाता है। राका और अनुमति पूर्णिमाके ही नाम हैं। सिनीवाली और कुहू अमावास्याके नाम हैं। अमा सूर्यका नाम है, इसीलिये जिसदिन चन्द्रमा सूर्यमण्डलमें होता है उस दिनको अमावस्या कहा गया है। चन्द्रमाको पूर्ण करके जब सूर्य चले जाते हैं तब देवता तथा पितरोंको सोमकिरणामृत पानकी

अनुमति मिली मानी जाती है। इसीसे पूर्णिमाका नाम अनुमति भी है। सूर्य, चन्द्रमाका संरक्षण करते हैं, इसीसे चन्द्रमाको (पूर्णचन्द्रमाको) राका भी कहा गया है। अमावास्याकी रात्रिको चन्द्रकी एकमात्र किरण शेष रह जाती है जिसे लेकर वह सूर्यकी सन्निधिमें जाता है, इसीसे अमावस्याको सिनीवाली भी कहा गया है। जितनी देर चंद्रमा सूर्यकी सन्निधिमें रहता है वह उतनीसी है जितनी देरमें कोयल "कुहू" पुकारती है। इसीलिये अमावस्याको कुहूः भी कहते हैं।

प्रथमासे (पौर्णिमाके पश्चातकी प्रथमासे) देवता सोम किरणामृत पीने लगते हैं। प्रथमाको अग्नि, द्वितीयाको रवि, तृतीयाको विश्वेदेवा, चतुर्थीको प्रजापति, पंचमीको वरुण, षष्ठीको वासव, सप्तमीको ऋषिगण, अष्टमीको आठोंवसु, एक-एक कला पीते हैं। नवमीके दिन यमदेव चंद्रकी दो कलाओंका पान कर लेते हैं। दशमीको मरुद्गण, एकादशीको रुद्रगण, द्वादशीको विष्णु, त्रयोदशीको कुबेर, चतुर्दशीको पशुपति एक-एक कला पीते हैं। फिर अमावस्याको पंद्रहवीं कलाको पितरगण पीते हैं। जो कुछ आभा या कला बच रहती है उसीको लेकर चंद्रमा सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट होता है।

पूर्वान्हमें सूर्यमें, मध्यान्हमें वनस्पतिमें, अपरान्हमें जलमें चंद्रदेवका निवास रहता है। जिस समय चंद्रदेव वनस्पतिमें रहते हैं, उस समय जो कोई वनस्पतिको तोड़ता है उसको ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जलमें प्रवेश करके चंद्रमा वह शक्ति जलको

देता है जिससे तृण-लता-गुल्म वृक्ष और औषधिकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार चंद्रमासे अमृतत्व प्राप्त जलको गौएं पीती हैं और उसीकी शक्तिमें विवर्द्धित औषधियोंको चरती हैं तो उनके थनोंमें दूध पैदा होता है। उस दुग्धामृत और उससे निकले घृतामृतसे, मन्त्रोंद्वारा, ब्राह्मणादि जो हवन करते हैं उससे पुनः चन्द्रमाकी शक्ति बढ़ती है। इसतरह चन्द्रमा क्षीण होता रहता है और क्षीण होकर पुनः आप्यायित भी होता रहता है। इसलिये सूर्यही चन्द्रकी वृद्धि अपनी रश्मियोंमें करते हैं।

हे साम्ब, इसतरह सबदेवोंसे पूजित महाद्युतिमान सूर्यनारायणकी, मित्र वनमें जाकर, तुम भी आराधना करो। जो पापात्मा होते हैं उनकेही मनोंमें कभी सूर्यनारायणकी भक्तिका सचार नहीं होता हो। अतः तुम मित्र वनमें चले जाओ और अनन्यभक्तिसे सूर्यनारायणका आराधन करो।

इति श्री हिन्दी साम्ब पुराणे सोम-क्षय-वृद्धि रहस्य नामक द्वाविंशोऽध्याय ॥ २२ ॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(२३) ग्रहणका रहस्य

सांबने, इतनी कथा सुनकर, प्रहृष्टमन हो, फिर पूछा कि हे ऋषि-श्रेष्ठ विप्रवर नारदजी, आपने तो सूर्यलोकमें पहुँचकर अनेक महान आश्चर्य और चमत्कार देख लिये हैं। यह चमत्कार आत्मविस्मृति करनेवाले और मनुष्योंकी बुद्धिमें भी न आ सकने वाले हैं। आपने जो कथा मुझको सुनायी है उनके पश्चात् भी एक संशय मेरे मनमें अबतक बना हुआ है, आप ही उसको मिटानेमें समर्थ हैं। संशय यह है कि एक ओर तो सूर्य हैं जो तेजोराशि और प्रकाश पुञ्ज हैं, दूसरी ओर राहु है जो अन्धकारका पुञ्जमात्र है। फिर यह बात किसतरह सम्भव है कि अन्धकार पुञ्जस्वरूप राहु सूर्यको, ग्रहणके दिन, ग्रसने लगता है?

नारदजी बोले कि हे यदुकुलकमल सांब, सूर्यके ग्रहणका प्रसंग वास्तवमें अविज्ञेय है। यह प्रसंग तो बड़े–बड़े महात्माओंके लिये ही परमज्ञानसे जानने योग्य है। पर मैं तुझे इस परमरहस्यको समझाकर सुनाता हूँ। तेरे मनमें यह देखकर व्यथा होती है कि सूर्यनारायणको राहु ग्रसने लगता है। यह परमज्ञानकी बात ज्ञानियोंके समझने और हृदयङ्गम कर रखने योग्य है। इस महाज्ञानको पाकरही सन्देहका नाश होता है। यदि सत्यही, राहु, तेजोराशि दिवाकरको निगलने लगता है तो वह

महातेज, राहुके उदरमें पहुंचकर, राहुको भी क्षणभरमें भस्म क्यों नहीं कर डालता है? सूर्यकी तिरछी निगाहसेही राहू सैकड़ों टुकड़े होकर नष्ट क्यों नहीं हो जाता है? सूर्य भी राहुके तीक्ष्ण दाँतोंसे शतधा खंडित होता है तो, *सम्पूर्ण अखंड-मंडलाकार* रूपमें, वह पुनः किम प्रकारसे उदय हो आता है?

राहुके ग्रसनेके बादभी सूर्यका तेज क्यों क्षीण नहीं होता; वह किसलिये अधिकतर दीप्तिमान होकर उदय हो जाता है? वास्तविक बात यह है कि तेजोराशि सूर्य, वास्तवमें, राहुके मुखमें नहीं जाते हैं। निधाताने चन्द्रमाकोही वह अमृत दिया है जिसको देवदानव पीते हैं। पर वह अमृत भी सूर्यसेही चन्द्रमाको मिलता है। ३३३३३ देवता सोम-अमृत पीते हैं। राहुकी उत्पत्तिभी अमरत्वके भागसेही हुई है। *अतः वह भी पर्वोंके समय* अमृत-पान करनेकी इच्छा रखता है। पृथिवीकी कालिमामयी छायासे चन्द्रको आच्छादित करके राहु जब चन्द्रमासे अमृत पान करना चाहता है तो पूर्णिमाको चन्द्रग्रहण होता है, और जब इसीभांति सूर्य मण्डलस्थ चन्द्रमापर अमावस्याके दिन वह आक्रमण करता है तो सूर्यग्रहण होता है। जिस तरह भ्रमर कमलका मधु पान करता है तो कमलका नाश नहीं होता है, उसी प्रकारसे राहुभी जब चन्द्रसे अमृत पीता है तो उसका नाश नहीं करता है। जैसे चन्द्रकान्तमणि चन्द्रमासे पैदा होती है, पर उससे चन्द्रमाका प्रकाश कम नहीं होता; जैसे सूर्यमणि सूर्यसे उत्पन्न होती है, पर उसके बाद सूर्यके प्रकाशमें कमी नहीं होती; जैसे इन

मणियोंसे अग्नि प्रज्वलित करने और प्रकाशका काम लेनेपर भी इनकी शक्तिमें कमी नहीं होती है, उसी भांति सूर्यचन्द्रके अमृतपानके पश्चात् भी सूर्य और चन्द्रके रूपमें अन्तर नहीं आता है।

जब इनको, राहू पृथिवीकी कालिमामयी छायासे आच्छादित करके अमृतपानार्थ ग्रसने लगता है, तबभी इन सूर्य और चन्द्रके तेजमें अथवा प्रभावमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है। जैसे दोहनके समय वत्सको देखकर गौ दुग्ध छोड़ देती है, उसी प्रकारसे चन्द्रसे, अमृतपानार्थी देवताओंके निकट आनेपर, अमृत झरने लगता है। जैसे माता सन्तानको स्तनपान कराती है, वैसेही चन्द्रमा अमृत-पानार्थी देव-पितरादिको अमृत पिलाता है। जैसे पिता अपनी पत्नीको आश्रय और शक्ति देकर सन्तानको दुग्ध पिलाने योग्य बनाता है वैसेही सूर्यनारायणभी चन्द्रमाको पोषित करके अमृतपान कराने योग्य बनाते रहते हैं। पर्वकालमें जब चन्द्रमासे अमृत झरने लगता है तो देवताओंकी भांतिही राहू भी अमृतपानार्थ झपटता है। वह पृथिवीके पूर्ण भाग, अर्ध भाग, तृतीय भाग अथवा उससेभी थोड़े भागकी छायासे चंद्रको आच्छादित करके, देवताओंसे बचे हुए अमृतको पीकर चला जाता है।

जब राहू नीचे रहता है, पृथिवी बीचमें रहती है और सूर्य-नारायण ऊपर रहते हैं तो सूर्यग्रहण होता है पर इसके विपरीत जब सूर्यनारायण इस ओर रहते हैं, पृथिवी बीचमें रहती है और चन्द्रमा ऊपर रहता है तो चन्द्रग्रहण होता है। क्योंकि

राहु पृथिवीकी छायाको लेकरही सूर्य-चन्द्रको आक्रांत करता है। इन स्थितियोंमें सूर्य और चन्द्रमाको राहु ग्रसनेके नामपर केवल आच्छादित मात्र करता है। जैसे किसी वस्त्रपर कीचड़ लगजाती है तो उसको धो-डालनेपर वह कपड़ा पुनः स्वच्छ हो जाता है उसी भांति चन्द्रमा भी ग्रहणोपरांत पुनः अपने रूपमेंही दर्शन देता है। जिस समय सूर्य अथवा चन्द्र राहुसे आच्छादित होते हैं उस समय विप्रगण जो जप-तप-हवन करते हैं उसकी शक्तिसे सूर्य-चन्द्रका पुनः वही रूप निखर आता है जो पहले था। मूर्ख लोग और साधारण जन यह रहस्य नहीं जानते हैं और केवल चर्म चक्षुओंसे जो देखते हैं उसीको सच मानते हैं।

यह चन्द्रसूर्यग्रहणका प्रकरण ऐसा है जिससे संसार मोहमें पड़ जाता है। इस दिन सर्व देवगणका समागम होता है। इसी लिये स्नान, दान, जप, तप करनेका महाफल होता है। जो इस कथाको सुनते हैं, पढ़ते हैं या सुनाते हैं, वे सब पापोंसे विमुक्त हो जाते हैं।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे ग्रहणरहस्य
नामक त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(२४) सांबके रोगकी निवृत्ति

वसिष्ठजी महाराज बोले कि हे राजा, जब नारदजीसे, सांबने, यह परम हर्षवर्धन और भक्तिभाव जागृत करनेवाला, सूर्यनारायणका माहात्म्य सुना तो वह वहांसे उठकर अपने पिताके पास चला गया। परम विनीत भावसे सांबने अपने पितासे कहा कि प्रभो ! मैं इस भीषण रोगसे अतिशय दुःखित हो उठा हूं। वैद्योंद्वारा किये गये औषधोपचारसे भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। अतः आप आज्ञा दें तो मैं वनमें जाकर जप-तप करनेमें प्रवृत्त होजाऊं। श्रीकृष्ण भगवानने सांबकी प्रार्थना स्वीकार करके उसको तप करनेकी आज्ञा प्रदान करदी। इसपर सांब समुद्रके उत्तरकी ओर स्थित चन्द्रभागा नदीके उस पार मित्रवनमें पहुंच गये। इस त्रैलोक्यविश्रुत उत्तम तीर्थमें रहकर सांबने सूर्यकी आराधना शुरू करदी। उपवास करते-करते सांबका शरीर दुर्बल और कृश हो गया। वह सूर्यकी प्रसन्नता—प्राप्तिके लिये वेदपुराणसम्मत इस परमगुप्त स्तोत्रको जपने लगे:—

यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं ह्यजरमव्ययम्।
युक्तं मनोजवैरश्वैः हरितैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ १ ॥
आदिरेषहि भूतानां आदित्यइति सज्ञितः।
त्रैलोक्यचक्षुरेवात्र परमात्मा प्रजापतिः ॥ २ ॥
य एष मण्डलेह्यस्मिन्पुरुषो दीप्यते महान्।
एष विष्णुरचिन्त्यात्मा ब्रह्माचैव प्रजापतिः ॥ ३ ॥

रुद्रो महेन्द्रो वरुण आकाशः पृथिवी जलम् ।
वायुः शशांकः पर्जन्यो धनाध्यक्षस्तथैव च ॥ ४ ॥
य एष मण्डले ह्यस्मिन् अग्निवर्चाः प्रकाशते ।
सहस्ररश्मिरेषोत्र द्वादशात्मा दिवाकर : ॥ ५ ॥
य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान् ।
एष साक्षान्महादेवो घृतकुम्भनिभः शुभ ॥ ६ ॥
कालोह्येष महायोगी सहारोत्पत्तिलक्षणः ।
य एष मण्डलेह्यस्मिस्तजोभि· पूरयन्महीम् ॥ ७ ॥
भ्रमते ह्यव्यवच्छिन्नो धातैषोमृत लक्षणः ।
नातः परतरो देवस्तेजसा विद्यते क्वचित् ॥ ८ ॥
पुष्णाति सर्वभूतानि ह्येष एव स्वधामृतैः ।
अन्तस्थो म्लेच्छ जातीयास्तिर्यग्योनिगतानपि ॥ ९ ॥
कारुण्यात्सर्वभूतानि पासि देव विभावसो ।
आपत्सूच विमोक्षार्थं त्व भक्तानभिरक्षसे ॥ १० ॥
चित्रकुष्ठांधबधिरान् खजान्पगुञ्जटांस्तथा ।
प्रपन्न-वत्सलो देव निरुजः कुरुषे नरान् ॥ ११ ॥
दद्रुगण्ड निमग्नाश्च निर्व्रणान्पुरुषांस्तथा ।
प्रत्यक्षदर्शीत्व देव समुद्धरसि लीलया ॥ १२ ॥
कामे शक्तिस्तवस्तोतुमार्तोहं रोगपीडितः ।
स्तूयसे त्व सदा देव ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभि ॥ १३ ॥
महेन्द्र-सिद्ध-गन्धर्वैरप्सरोभि सगुह्यकैः ।
स्तुतिभिः किंपवित्रैर्गीतमदेवसमीरितैः ॥१४॥
यस्यते ऋग्यजुः साम्नात्रितय मडलेस्थितम् ।
ध्यानिनांतुपरंध्यान मोक्षद्वारच मोक्षिणाम् ॥१५॥

अनन्तं तेजसां तेजोह्यचिंत्याव्यक्त निर्मलम् ।
यदप्यपाहृत किंचित् स्तोत्रेस्मिञ्जगतःपते ।
आर्त्तभक्तिच विज्ञाय तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१६॥

अर्थात्–इस दिव्य, अजर, अव्यय शुक्लमण्डलमें ब्रह्मवादिभि हरितवर्णके सात घोड़ोंवाले रथमें जो विराजमान है वही सबसे पहला होनेके कारण आदिदेव आदित्य पुकारा गया है। वही परमात्मा प्रजापति विश्वका नेत्र है। जो महान् पुरुष इस उपर्युक्त मण्डलमें दीप्तिमान है वही अचिन्त्यात्मा विष्णु है, वही प्रजाको उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मा है। वही रुद्र है, वही महेंद्र है, वही वरुण है। आकाश, पृथिवी, जल, वायु, चन्द्रमा, वर्षाका स्वामीभी वही हैं। वही धनाध्यक्ष है। इसी मण्डलमें जो प्रज्वलित अग्निके समान तेज है, वही साक्षात् द्वादशात्मा सूर्यनारायण है। इसी मण्डलमें दिखायी देनेवाला जो महान् पुरुष है वही महायोगी संहारोत्पत्ति लक्षणवाला साक्षात् महादेव है। इसी मण्डलमें स्थित जिसने इस भूमण्डलको तेजसे परिपूर्ण कर रखा है, जो निरन्तर अमर रूपमें भ्रमण करता हुआ दिखायी पड़ता है, उससे परे कोई और देवता नहीं है। यही देवता स्वधामृतसे सब देवताओंको पुष्टि देता है। यही सूर्यदेव पतित जातियों और पशु पक्षियोंका भी कल्याण करता है। कोढियोंको, बहरोंको, रुञ्जोंको, पंगुओंको, जड़ोंको–सब प्रकारके असाध्य रोगोंसे पीड़ितोंको, शरण आनेपर, यही भक्तवत्सलदेव निरोगी कर देता है। हे प्रभो, आप तो कृपा करके महा कोढियोंको भी लीलामात्रसेही निरोग कर देते

हो। मेरी क्या शक्ति है कि आपकी स्तुति कर सकूं; आपकी स्तुति तो नित्यप्रति ब्रह्मा-विष्णु-महेशतक करते रहते हैं। इन्द्र, सिद्धगण, गन्धर्वगण, अप्सराएं और अन्य देवयोनिजन सदा आपकी स्तुति करते रहते हैं। आपकी स्तुति कोई करेभी तो क्या कर सकता है क्योंकि आपकी स्तुतियाँ तो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद भी, मूर्तिमंत होकर, पवित्र मंत्रोंसे करते रहते हैं। आप ध्यानियोंके ध्यानके आधार हैं, आप मोक्षार्थियोंके मोक्षका द्वार हैं! आप अनन्त तेजस्वियोंमें भी तेजवान हैं। आप अचिन्त्य हैं, आप अव्यक्त हैं और निर्मल हैं। इस स्तोत्रमें, हे जगत्पति, यदि कोई त्रुटि रह गयी हो तो आप उसको क्षमा करें क्योंकि मैं आपका दुःखी भक्त हूँ।

यह स्तोत्र पढ़ते-पढ़ते बहुत दिन हो गये तो एकदिन जाम्बवतीतनय सांबसे, सूर्यनारायणने प्रेमभरे शब्दोंमें कहा—

बच्चे! मैं तेरे तपसे बहुत प्रसन्न हूँ, जो चाहता है आज वही वर मांगले!

सांबने कहा कि हे भगवन्, यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझे यही वर दीजिये कि आप सनातन परब्रह्मके चरणोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे।

सूर्यनारायणने इस प्रार्थनापर प्रसन्न होकर कहा—हे सुव्रत, इस प्रार्थनासे तो मैं और भी बहुतबहुत प्रसन्न हुआ हूँ, अतः इसके सिवा एक वर और भी मांग ले।

सांवने यह वर मांगा कि मेरा यह कुष्ठगलित शरीर न रहे। सूर्यनारायणके तथास्तु कहते ही सांवने अपने कुष्ठविगलित शरीरको इस तरह छोड़ दिया जैसे सांप केंचुलीको छोड़ता है। इस प्रकार वर प्राप्त करनेपर सांव पुनः परम रूपवान हो गया।

सूर्यनारायण बोले—हे सांब तूने जो मांग लिया है वह तुझे मिल गया है। पर मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूं, अतः यह वर तुझे और भी देता हूं कि आजके पश्चात् जो लोग तेरा नाम लेकर मेरे मन्दिर बनायेंगे वे सनातन स्वर्गलोकमें स्थान प्राप्त करेंगे। तू इसी चन्द्रभागा नदीके किनारे मेरा मन्दिर बनाकर पूजा कर। यहां जो नगर बसेगा वह तेरे नामसेही प्रख्यात होगा। जबतक यह पृथिवी है तबतक तेरी कीर्ति अक्षय रूपमें रहेगी। इसके अतिरिक्त अब मैं तुझे स्वप्नमें दर्शन देता रहुँगा। इस प्रकारसे वृष्णिकुलके सिंह सांवको वरदान देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

जो द्विज इस स्तोत्रको तीनों समय भक्तिसे पढ़ेंगे—जो नर-नारी दुःख शोकसे तप्त होकर भी इसका पाठ करेंगे, वे दुःख और शोकोंके महासागरको भी पार कर जायंगे। आंखोंकी, मनकी और ग्रहोंकी पीड़ाएं जाती रहेंगी। जो लोग घोरबन्धनोंमें पड़े होंगये वन्धनसे छूट जायंगे। जो जन सात रातों तक इस स्तोत्रके साथ २१०० आहुतियां देंगे वे यदि राज चाहते होंगे तो राज पा-लेंगे; धन चाहते होंगे तो धन पा-लेंगे। रोगीजन उसी भांति रोगसे मुक्त हो जायंगे जिस भांति सांव रोगमुक्त हो गया था।

इति श्री हिन्दी सांब पुराणे सांवस्य-कुष्ठ-निवृति नामक
चतुर्विंशतितमोऽध्याय ॥ २४ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(२६) मगोंका वर्णन और आगमन

वर प्राप्त करनेके पश्चात् पहलेका सा सुन्दर सुरूप पा लेनेके उपरान्त साम्ब मनमें बहुत प्रसन्न हुआ। वह अब भी पहले की भांति तपस्या किये चला जा रहा था। एक दिन अन्य तपस्वियोंके साथ साम्ब भी थोड़ी दूरपर स्थित चन्द्रभागा नदीमें स्नान करनेके लिये गया। स्नानोपरान्त अचानक साम्बने देखा कि नदीकी तरङ्गोंमें तैरती हुई, प्रभापूर्ण, सूर्यप्रतिमा चली आरही है। वह तैर कर प्रतिमाको अपने आश्रममें ले आया। फिर उसने उस मित्रवन स्थित अपनी कुटीमें उस प्रतिमाकी विधिसे स्थापना कर दी। फिर प्रणामकरके साम्बने उस सूर्य प्रतिमासेही पूछा कि हे प्रभो, आपका यह सुन्दर रूप किसने विनिर्मित किया है? प्रतिमाने कहा—हे साम्ब, सुन, मैं बताता हू कि किसने कहा इस सुन्दर प्रतिमाको विनिर्मित किया है। पूर्वकालमें मेरा रूप अत्यन्त तेजमय था। किसीको वह सहन नहीं होता था। अतः देवताओंने प्रार्थना की कि हे देवेश ऐसी कृपा कीजिये कि आपका यह रूप सब प्राणधारियोंके लिये सहनीय हो जाय। इसपर मैंने विश्वकर्माको आज्ञा दी कि तेजशातनपूर्वक मेरे रूपको निखार दे। उसने ही तेजशातन करके यह रूप निखारा है। उसने रूप छाटनेके लिये शाकद्वीपमें यत्र लगाया था। तेरी प्रीतिके लिये ही

उसने फिर इस प्रतिमाको बनाया है। हिमालय पर्वतपर जो सिद्धजनोंसे सेवित पुण्य-अरण्य है, वहींसे, एक कल्पवृक्षकी शाखा काटकर उसने यह प्रतिमा विनिर्मित की है। उसीने नदीमें प्रवाहित किया था। अब इस रूपमें सदा तू मेरे निकट इसी स्थानपर रह सकेगा।

वसिष्ठजी बोले कि हे राजन्, सूर्यनारायणकी यह वाणी सुनकर और उनका उस रूपमें प्रत्यक्ष दर्शन पाकर सांबने चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यनारायणका मन्दिर बनवा दिया और उसीमें उस प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करा दी। फिर सांबने देवर्षि नारदजीसे कहा कि महाराज! आपकी कृपासेही मुझे यह सुन्दर शरीर पुनः प्राप्त हुआ है। साथही सूर्यनारायणके प्रत्यक्ष दर्शन भी मैंने पा लिये हैं। इतना सब कुछ प्राप्त करनेके पश्चात् भी मेरा मन कुछ चिन्तितसाही रहता है। चिन्ता यह है कि मन्दिरमें देवताकी सेवापूजा कौन करेगा? मुझपर कृपा करके उस ब्राह्मणको बताइये जो सबगुणोंसे युक्त हो और सूर्यनारायणकी सेवापूजा करनेका अधिकारी हो।

देवर्षिने यह सुनकर कहा कि सांब, यहांके ब्राह्मणतो सूर्यनारायणका परिग्रह स्वीकार न करेंगे। यह तो महागुरुत्ववाला परिग्रह है। देवताका धन लेनेवालोंसे ब्राह्मी क्रिया नहीं होती है। जो लोग विधिविधान तो जानते नहीं हैं और केवल लोभके फेरमें पड़कर देवताका धन खा लेते हैं वे देवलक होजाते हैं और उनको ब्राह्मणजन अपनी पंक्तिमें बैठाकर भोजन नहीं कराते हैं। मनुने देवधनको निन्दित ठहरा दिया है, अतः ब्राह्मणजनभी

ॐसिद्धगणेशायनम

(२५) स्तवराज स्तोत्र

वसिष्ठ ऋषि बोले, हे राजा इसके बाद भी सांब तप करते रहे और सूर्यसहस्रनामका जप करते गये। उनका शरीर दुर्बल होता देखकर, क्लेश पाते हुए सांबसे, सूर्यनारायणने, स्वप्नमें दर्शन देकर कहा; हे जांबवतीतनय सांब अब तूने मेरे सहस्रनामोंका बहुत जप कर लिया अब मैं तुझे अपने उन पवित्र और शुभ २१ नामोंको बताता हूं जो परम रहस्यमय हैं। तू इनको याद रखकर इनकाही कीर्तन कर।

ॐ विकर्त्तनो विवस्वाश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः।
लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुः ग्रहेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा।
तपनस्तापनश्चैव, शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्माच सर्वदेव नमस्कृतः॥

ये २१ नाम मेरे मुझे सदा अतिशय प्यारे हैं—१ विकर्त्तन, २ विवस्वान, ३ मार्त्तण्ड, ४ भास्कर, ५ रवि, ६ लोकप्रकाशक, ७ श्रीमान, ८ लोकसाक्षी, ९ त्रिलोकेश, १० कर्त्ता, ११ हर्त्ता, १२ तमिस्रहा, १३ तपन, १४ तापन, १५ सप्ताश्ववाहन, १६ गभस्तिहस्त, १७ ब्रह्मा, १८ सर्वदेवनमस्कृत, १९ ग्रहेश्वर, २० शुचि और २१ लोकचक्षु। इनके जपसे आरोग्य, धन और यश-की वृद्धि होती है। इसीका नाम तीनों लोकोंमें मेरा स्तवराज है।

जो नर-नारी सायंप्रातः भक्तिसे इसका पाठ करते हैं वे सब पापोंसे मुक्त होजाते हैं। शरीरसम्बन्धी, वाचासम्बन्धी, मनसम्बन्धी जितने पाप हैं वे सब मेरे सामने बैठकर इसका एकबार जप करते-ही नष्ट होजाते हैं। तू इसीको जप, इसीको होम और इसीको सन्ध्योपासन मान। इसीको बलिमंत्र, इसीको अर्घ्य मंत्र, इसीको धूप दानका मंत्र मानकर काम कर। अन्नदान करते समय, स्नान करते-करते, नमस्कारके समय और प्रदक्षिणाके समय, इसी स्तवराज का जप करनेवाले सब व्याधियोंसे भी छूट जाते हैं।

इतना कहकर जगदीश्वर भास्कर भगवान अन्तर्धान होगये। सांबभी सूर्यनारायणका आराधन स्तवराजसे करने लगा। वह नीरोग होकर, इसीके प्रभावसे, पवित्रात्मा होगया।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे श्री सूर्यनारायणोपदिष्ट "स्तवराज" महत्व-वर्णन नामक पञ्चविंशतितमोऽध्याय ॥२५॥

उसकी प्रशंसा नहीं करते हैं। जो पापात्मा ब्राह्मण देवताके धनपर जीविका चलाता है वह परलोकमें गिद्धके उच्छिष्टका भोजन पाता है। इस स्थितिमें जो विधिज्ञ और ज्ञानी ब्राह्मण तेरे सूर्यमन्दिरमें सेवा पूजा करेगा उसकी बात तू स्वयम् सूर्यनारायणसेही पूछ। नारदजीकी आज्ञा मानकर सांबने सूर्यनारायणसेही पूछा कि प्रभो यहां आपकी पूजा करनेका कार्य किसको दिया जाय। यह सुनकर सूर्यनारायणकी प्रतिमा बोली कि हे सांब, जम्बूद्वीपमें मेरी सेवापूजा करने योग्य तो कोई भी ब्राह्मण नहीं है। तू मेरी पूजा करनेवालोंको शाकद्वीपसे बुला। खारे समुद्रके उस-पार क्षीरसागरसे वेष्टित जो दूर द्वीप है उसको शाकद्वीप कहते हैं। वहांके चारोंवर्णधर्मानुयायीजन पुण्यशील हैं। मग (ब्राह्मण), मागग (क्षत्रिय) मानस (वैश्य) मंदग (शूद्र) यह नाम शाकद्वीपमें प्रचलित हैं। उनमें कोई वर्णसंकर नहीं है। उनमें कोई वर्णधर्मरहित भी नहीं है। शुद्ध धर्मप्राण होनेके कारण शाकद्वीपकी जनता सम्पूर्णतः सुखी है। मग ब्राह्मणोंको, मैंनेही, पहले अपने तेजसे उत्पन्न किया है। मैंनेही, उनको रहस्यसहित चारों वेद पढाये हैं। वे लोग परम गोपनीय, विविध वेदस्तोत्रोंसे मेरा पूजन-ध्यान-जप करते हैं। वे मेरी भावनासेही भरे हुए हैं, वे मुझमेंही श्रद्धा रखते हैं, वे मेरेही भक्त हैं और उनकी मुझमेंही आस्था है। वे मेरेही सेवक हैं और वे मेरेही व्रतमें व्रती रहते हैं। वे अव्यंग धारण करते हैं और विधियुक्त कर्मोंमें निरत रहते हैं। वहां ये मग ब्राह्मण मेरे मतानुसारही मेरी पूजा करते रहते हैं।

शाकद्वीपमें, गन्धर्वों सहित देवता और चारणों सहित सिद्धजन सबके देखते-देखते, मेरे ब्राह्मणोंके साथ विहार करते रहते हैं।

मैंही श्वेत द्वीपमें विष्णु, कुशद्वीपमें महेश्वर, पुष्करद्वीपमें ब्रह्मा, शाकद्वीपमें भास्कर नामसे पूजा जाता हूँ।

हे सांब, तू इस लिये शाकद्वीपसे मगोंको यहां ला; वही मेरी पूजा कर सकेंगे।

वसिष्ठ ऋषि बोले कि हे राजा वृहद्बल! सूर्यनारायणसे उपदिष्ट होकर जांववतीतनय सांबने भी तथास्तु कहा। फिर मित्रवनसे विदा होकर सांब द्वारका नगरीमें पहुँचा और देवदर्शन तथा ईश्वरी आज्ञाकी सारी बातें अपने पिता श्रीकृष्णको कह सुनायीं। श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर गरुड़पर बैठकर सांब शाकद्वीपमें जा पहुँचा। सांबने शाकद्वीपमें मगोंको उसी प्रकारसे विधिसहित पूजापरायण पाया जैसा सूर्यनारायणने बताया था। सांबने सब द्विजोत्तमोंको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके, भूरिभूरि प्रशंसा करते हुए कहा कि हे विप्रवरो! मैं श्रीकृष्णका पुत्र जांववती तनय सांब हूँ। आप धन्य हैं जो सूर्यनारायणकी पूजामें निरत रहते हैं। आप पुण्यकर्मा हैं और शुभाकांक्षियोंको वरदान देनेवाले हैं। मैंनेभी चन्द्रभागा नदीके तटपर, मित्रवनमें, सूर्यनारायणका मन्दिर बनाया है। वहांसे सूर्यनारायणनेही मुझे, आज्ञा देकर, यहां भेजा है। आप मेरे साथ वहां पधारिये।

सांबकी बात सुनकर मगोंने कहा कि हे सांब तूने सत्यही कहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सूर्यनारायणने स्वयम्, यह

बात हमसे पहलेही कह दी थी। अतः हम तैयारही बैठे थे। सूर्य-नारायणकी पूजाप्रतिष्ठाके लिये, मगोंके १८ कुल तेरे साथ जायंगे।

इसपर उन १८ कुलोंको, पत्नियों और पुत्रोंसहित, गरुड़पर विराजमान कराकर, सांब शीघ्रही ले आया। सांबने सूर्यनारायणकी प्रतिमाके सामने सारा वृत्तांत निवेदित करके कहा कि हे प्रभो मैं यहां १८ कुलोंको ले आया हूँ।

सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर कहा कि यह कार्य परम शोभन हुआ है। ये मग ब्राह्मण मेरी पूजा करनेवाले और प्रजाको कल्याण देनेवाले हैं। अब यही लोग यहां भी मेरे मतके अनुसार मेरी पूजाका प्रचार विधिविधान सहित करेंगे। इनके रहते हुए मेरी पूजाके सम्बन्धमें अब तुझे कोई चिन्ता न रहेगी।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे मगब्राह्मण माहात्म्य वर्णन नामक षड्विंशोऽध्याय ॥ २६ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(२७) मग-माहात्म्य

इतनी कथा सुनकर राजा बृहद्बल बोला कि अहो! ये मग-ब्राह्मण धन्य हैं, पुण्यशील हैं, श्लाघ्य हैं, बड़भागी हैं, वरप्रदान-क्षम हैं, जो सदा सूर्यनारायणकी पूजामें निरत हैं। जो अनित्य मनुष्य देह पाकरभी सदा सूर्यनारायणकी पूजामें निरत रहते हैं, उन मगोंके लिये सब कुछ पर्याप्त रूपमें प्राप्तही है। किन्तु इनके और इनकी पूजा-अर्चनाके सम्बन्धमें मेरे मनमें कई जिज्ञासाएं हैं। हे ऋषिराज, आप उनका निवारण कीजिये। आप यह बताइये कि मग कौन हैं? याजक कौन हैं? इनका परमज्ञान कौनसा है? उनका ज्ञेय क्या है? यह किस प्रकार पूजा करते हैं? ये सब बातें, हे ऋषिराज वसिष्ठजी, आप मुझे बतानेकी कृपा कीजिये क्योंकि आपही सर्वसमर्थ हैं।

वसिष्ठ ऋषि बोले—राजा, ये मग लोग मोक्ष अर्थात् निवृत्ति-मार्गके अनुयायी हैं। कर्मयोगका आश्रय लेकर ये मोक्षप्राप्तिके लिये कृतोद्यम रहते हैं। ये मगब्राह्मण फलोंसे, मनोरम पुष्पोंसे, अन्नोंसे, औषधियोंसे सूर्यनारायणका हवन करते हैं। मंत्रोंसे होम करके परमहोमका पान करते हैं, इसीसे ये मग ब्राह्मण पवित्रात्मा और कल्मषरहित मनवाले होते हैं। इसीसे ये भास्करकी तेजोमय परम-दिव्य कलामें प्रवेश पाते हैं।

सूर्यनारायणकी दिव्य-तेज-सम्पन्न तीन कलाएं मुख्य हैं। इनमें एक कर्मकाण्डसाधनमयी है जो अग्निमें स्थित है। दूसरी योगद्वारा साध्य वायुमार्गमें स्थित प्रकाशमयी कला है। तीसरी कला स्वयम् सूर्यमण्डलमें स्थित है जो ज्ञानमार्गमय है। इस मण्डलको, जो दिव्य-अमर-अव्यय है, ऋटमयमण्डलभी कहा गया है। इस मण्टलके मध्यमें जो पुरुष विराजमान है वह सदसदात्मक, क्षराक्षर, महासूक्ष्म, निष्कल-सकल है। इसकी उपासना भी, साकार निराकारमय, द्विविधि होती है।

साकार रूपमें सूर्यनारायण सब जड़-जीवोंमें प्राणात्मा होकर अवस्थित हैं। तृणादिमें, गुल्मलतादिमें, वृक्षादिमें, मृग सिंह-गजादिमें, पक्षियोंमें, सुरद्विजादिमें (देवयोनियोंमें) मनुष्योंमें, स्थलचरोंमें, जलचरोंमें—साराश सबमें वही सूर्यनारायण व्याप्त है। यह सूर्यनारायणका कलात्मक स्वरूप है। दूसरा स्वरूप निष्कलात्मक है जो तेजमय कलामें स्थित है। यही धूप, वर्षा और बर्फ देता है।

तीसरी मूर्ति पूर्ण निष्कलात्मक हिरण्यगर्भ है जो परमपद है। वह देवयानपथसे और कर्मयोगसे प्राप्तव्य है, जो आदित्य सिद्धान्त जाननेवाले हैं अथवा जो साख्ययोग जाननेवाले हैं वे भी परमपदको प्राप्त होते हैं—इसीको मोक्षभी कहा गया है। इस पदको पाकर आत्मा निर्मल और निर्द्वन्द्व हो जाता है। वहा पहुचकर शोच नही रहता। वेदमाता गायत्री मत्रमेंभी यही है जिसमें २४ अक्षर हैं। पच्चीसवा वह तत्वस्थ स्वयम है जिसका

ध्यान तत्वविद् करते हैं। वेदवादी उस आदित्यको ही ॐकारमें स्थित जानकर ध्यान करते हैं। ॐ अक्षरमें २॥ मात्रा मानी गयी है—आधी मात्रा "म" कारमें है। वह इसमें आधी मात्रा-वाले व्यञ्जनात्मक "म" में स्थित है। जो मकार योग जाननेवाले हैं उनका ज्ञान आदित्यमयही है। मकार ध्यानयोग जाननेवाले होनेसे ही शाकद्वीपीय ब्राह्मण मग कहलाये हैं। और ये मगलोग श्रीसूर्यनारायणका धूप, माला, जप, उपहारादिसे यजन करते हैं इसी लिये इनको शास्त्रोंमें याजक भी कहा गया है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे मगमाहात्म्य
वर्णन नामक सप्तविंशोऽध्याय: ॥२७॥

ॐ सिद्धगणेशायनम

(२८) मगऋषि और उनका योग

मग माहात्म्य और उनके योग ज्ञानकी कथा सुनाकर ऋषिराज वसिष्ठजी बोले कि हे राजा वृहद्वल, अब मगोंकी ज्ञानोपलब्धिकी वार्ता सुनो!

यह शरीर नहीं भूवानास है। अस्थि (हड्डी) स्थूण, स्नायु, आदि युक्त यह शरीररूपी घर है। इसको मास शोणितसे लीपा गया है। फिर चर्मसे इस शरीरको आवद्ध कर दिया गया है। इसपर भी यह शरीर-गृह मूत्रपुरीपकी दुर्गन्धिवाला है; रोगोंका घर है और जरा (बुढापा), मरण, शोकादिसे भरपूरहै। ऐसा घर हमें अपने कर्मोंकी गक्तिसे प्राप्त हुआ है। ज्ञानियोंका काम है कि इस बुरे और गन्दे घरका मोह त्याग दे। इस जन्म मरणके पिंजरेसे बचनेकी पात्रता प्राप्त करनेवालोंके लक्षण यह हैं कि वे कृपालुत्व, क्षमा, सत्य, आर्जवत्व, शौचता, और सर्व प्राणियोंके लिये समताका भाव रखते हों; जैसे तिलोंमें तेल रहता है, जैसे दूधमें दही रहता है, जैसे काष्ठमें अग्नि विद्यमान रहती है वैसे परब्रह्मको सबमें व्याप्त जाननेवाले हों। धैर्यशीलका काम है कि धीरज रखता हुआ मोक्षका उपाय सोचे और उसका अनुसरण करे। निश्चल मनसे तपस्या करता हुआ तनको शुद्ध बनाये। बुद्धिसे इन्द्रियोंको रोकता हुआ इस प्रकार इस शरीरमें रहे जैसे पक्षी घोंसलेमें

रहता है। इन्द्रिय-दमन करनेवालेका त्रास धारणासेही होजाता है।

१ देहके दोषोंका प्राणायामसे नाश करे,

२ धारणासे दुष्कृत्योंको मिटादे,

३ प्रत्याहारसे विषयोंका त्याग करे,

४ ध्यानसे अधार्मिकपनको त्यागदे।

जैसे धौंकनीसे फूंकी हुई अग्निद्वारा धातुओंकी पर्वतराशिके भी दोष दग्ध होकर निकल जाते हैं, उसी प्रकारसे मनोनिग्रहकी आग इन्द्रियोंद्वारा किये गये दोषोंकी राशिकोभी भस्म कर देती है। ज्ञानीजनोंका काम है कि चित्तको चित्तसेही शुद्ध करे, मनको मनसेही विशुद्ध बनावे, भावोंको भावोंसेही परिष्कृत करे, बुद्धिकोभी बुद्धिसेही निर्मल बनावे। चित्तके निर्मल होनेके प्रभावसेही शुभाशुभ कर्मों एवं कर्मबन्धनोंका नाश होता है, शुभाशुभ कर्मबन्धनोंसे विनिर्मुक्त होकर आत्माराम निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होजाते हैं। फिर वह निर्मम होकर अहंकार-रहित भावको प्राप्त होते हैं। इतना होनेपर उनको परमपदकी प्राप्ति होती है।

हिरण्यगर्भ भगवान सूर्यनारायणका पूर्वान्हमें (अथवा सृष्टिके आरम्भकालमें) लोहितवर्ण, मृण्मयरूप माना गया है जो ऋग्वेदमय और सतोगुणविशिष्ट है।

मध्यान्हकालमें (अथवा सृष्टि रचना हो चुकनेपर) उनका वर्ण शुक्ल है जो यजुर्वेदमय और रजोगुण विशिष्ट है।

सायंकालमें उनका रूप किंचित कृष्णवर्णवाला है। यह रूप सामवेदमय और तमोगुण विशिष्ट है।

इस प्रकारसे सूर्यनारायण त्रिगुण विशिष्ट हैं। इन तीन गुणविशिष्ट स्वरूपोंके व्यतिरिक्त चौथा स्वरूप हिरण्यगर्भ संज्ञक ज्योतिस्वरूप है जो सूर्यमण्डलमें विराजमान है। इस ज्योति प्रकाशमय-सूक्ष्मतम रूपकोही निरंजन कहा गया है। जो जन निगुणात्मक वेदविद्याके ज्ञाता हैं और सूर्य सिद्धांतको माननेवाले हैं वे ही मग हैं। वे परम पद प्राप्तिके लिये जिस योगका अनुसरण करते हैं वह यह है कि ॐकारका उच्चारण करते हुए ध्यानसे कल्मषरहित होकर पद्मासनसे बैठजाय। हाथोंको नाभिके निकट रखले। इड़ा पिङ्गला-सुषुम्नाके सहयोगसे रेचक पूरक कुम्भक प्राणायाम करे। इस प्रकारसे जब देह स्थित पंच प्राणवायुओंको शुद्ध कर चुके तो पैरके अगूठेसे ध्यान जमाता हुआ उपरकी ओर उठे। पैरके अगूठेसे उपर उठकर नाभिमें परब्रह्मका ध्यान करे जो निर्धूमअग्निके समान है। फिर हृदयमें उनका सोमस्वरूपमें ध्यान करे। मूर्ध्निम (मस्तकमें) पुन. श्रीसूर्य नारायणका ध्यान कर मानो वे शुद्ध अग्नि शिखा स्वरूप हैं। जैसे वायु असह्य अग्निको भी सहन करके उपर चला जाता है, इसी प्रकार आदित्यज्ञान सम्पन्न योगी मस्तकमें स्थित शुद्ध अग्निशिखासे सूर्यका ध्यान धरताधरता सीधा सूक्ष्म रूपसे, सूर्य मण्डलमें चला जाता है। वहा पहुचनेपर इस निमूढ जगतका ध्यान लवलेश भी नहीं रहता है। आदित्यभक्तका यही परमपद है।

प्रथम ध्यानका स्थान हृदयमें है, द्वितीयका अग्निमें, तीसरेका तापन प्रभुमें, चतुर्थका सूर्यमण्डलमें है। ज्ञानीजन चौथे स्थानको सुरेश, परब्रह्म भास्करका स्थान कहते हैं। द्वितीयस्थानको भी (हृदयमें) सुविज्ञजन सुरेश्वर सूर्यनारायणका ही स्थान मानते हैं।

चतुर्थस्थानही सर्वाधिक जानने, मानने और प्राप्त करने योग्य है; वही संसारके बन्धनोंका नाश करने और मोक्षके परमपदको देनेवाला है।

हे राजा बृहद्बल! मैंने मगोंके मतानुसार यह ऋषिचरितानुयायी योग तुझे सुनाया है। इसको जाननेवाले उस परमपद को जाते हैं जो सिद्धजनोंके लिये भी दुर्लभ है। यह सूर्यनारायणका योग अमृतस्वरूप है और लोककल्याण करनेवाला है। इसका आचरण करनेवाले मग ऋषिजनोंके चरितको देख-सुनकर धीमान मायामोह-रहित होते हैं और मोक्ष पाते हैं।

मैंने यह महत् ज्ञान तुझे दिया है जो केवल श्रद्धालु, आस्तिकजनोंकोही देने योग्य है। भला चाहनेवालोंका धर्म है कि कुबुद्धियोंको और नास्तिकोंको यह ज्ञान और यह योग कदापि न दें।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे मगऋषि-महत्व
सहित आदित्ययोगज्ञान नामक
अष्टाविंशोऽध्याय ॥२८॥

ॐ सिद्धगणेशायनम.

(२९) प्रतिमा लक्षण

ऋषिराज वसिष्टजीने यह परमपावन कथा सुनाकर कहा कि हे राजा वृहद्वल, अब तुम प्रतिमा लक्षणादिकी कथा सुनो। नारद-ऋषिने सांबके हितके लिये जो कथा सुनायी थी यह वही है।

पूर्वकालमें आदित्यकी प्रतिमाका पूजन नहीं होता था। सूर्यनारायण जिस मण्टलमें सदा आकाशमें स्थित है, उस मण्टलके उपासनाही देव-ऋषि-मनुष्य किया करते थे। बादमें भक्तिमान जन उनको मण्डलाकृतिमें पूजने लगे। इसके पश्चात्‌ही विश्वकर्माने, सर्व-लोकहितार्थ, सूर्यनारायणकी प्रतिमा पुरुषाकृतिमय निर्मित की।

देवर्षि कहने लगे कि हे यदुनन्दन सांब, सबके हितके लिये मैं तुझे अब प्रतिमा-स्थापनादिका विधि-विधानभी सुनाता हूँ।

घरमें जो प्रतिमा स्थापित की जाती है, उसके लिये कोई नियम नहीं है। वहां सब बातें जाननेवाले मनसेही स्थापनादि सहित सेवा-पूजा करने लगते हैं। पर जहां देवस्थान बनाना हो वहांपर मूर्तिकी परीक्षा करलेना परमावश्यक होता है। सुविज्ञ-जनोंको उचित है तत्वतः भूमिके लक्षणोंकी भी छानबीन करले। पहले भूमि-परीक्षा करलेना उचित है, फिर उसपर देवस्थान बनाना योग्य है। जो भूमि इष्ट गन्ध-रसादि युक्त हो उसीको पसंद करना

चाहिये। जिस जगह देवस्थान बनाना है वहांकी भूमिकी मृत्तिका कंकट, तुष, केश, अस्थि, क्षार और कोयलों आदिसे रहित होनी चाहिये। वहाकी मृतिका श्वेत हो, लाल हो, पीली हो या काली हो। वह भूमि मेवोंकी दुंदुभीसे निर्घोषित हो, उपजाऊ हो तो उत्तम बात है। शुक्ल, रक्त, पीत और कृष्णवर्णकी भूमि क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि वर्णोंके लिये श्रेष्ठ है।

इस प्रकार परीक्षा की गयी भूमिपर ४ हाथ लम्बा-चौड़ा चतुरस्र चौका लगाकर वहां एक हाथ लम्बा और एक हाथ चोड़ा गढा खोदे जो १० अंगुल गहरा हो। फिर इसको निकली हुई मृत्तिकासे परिपूरित करदे। यदि इस निकली हुई मृत्तिकासे पूरित करनेपर गढा पूरा भर जाय तो भूमिको समानगुणयुक्त समझे, कम रहे हीन गुणवाली माने। यदि गढा भरनेके पश्चात मृत्तिका बच रहे तो उस भूमिको वृद्धिकारिणी समझना चाहिये। सूर्यनारायणका मन्दिर प्रायः पूर्वाभिमुखही बनाना उचित हे, पर कभी पश्चिमाभिमुख भी होता है। मन्दिर के दक्षिण पार्श्वमें सूर्य स्नानगृहकी कल्पना करे। उत्तर पार्श्वमें अग्निहोत्र गृह रचे। उत्तर पार्श्वमे शंकर और मातृकाओंका स्थान निर्मित करे। ब्रह्माजीकी पश्चिम ओर ओर विष्णुभगवानकी उत्तरकी ओर स्थापना करे।

मन्दिरमें देवप्रतिमा स्वरूपमें, दक्षिण पार्श्वमें निक्षुभा देवी और वामपार्श्वमें राज्ञी देवीकी स्थापना करनी चाहिये। पिंगलको दक्षिण भुजाकी ओर, दण्टनायकको सूर्यनारायणकी प्रतिमाकी वाम

लेना चाहिये। वल्मीक, स्मशान, चैत्य, आश्रममें उगे हुए वृक्ष, पक्षियोंके घोंसलोंमे भरपूर, टूटवाले, नये उगे हुए, शस्त्र-वायु-अग्नि बिजली हाथी आदिसे विकृत किये वृक्षोंसे भी प्रतिमाके लिये काष्ठ न लेना चाहिये। दो शाखाओंवाले, दुर्गन्धवाले, अपुनद्वारा लगाये गये और अकालमें फल पुष्प देनेवाले वृक्षोंसे भी काष्ट न लेना चाहिये। जो वृक्ष जलेजलाये हों, रुक्ष हों, खोखलोंमें परकोटे रखनेवाले हों उनको भी छोड देना चाहिये। एक, दो या तीन शाखाओंवाले वृक्ष भी अधम ही होते हैं। शुचि, एकान्त, अङ्गार कण्टक रहित, पूर्व तथा उत्तरकी ओर झुकी हुई भूमिमें उत्पन्न वृक्ष उत्तम होते है। नदी और जलाशयोंके निकट उत्पन्न पुष्पित वृक्ष (जो टेढे-मेडे न हों और छिद्र खोखले न रखते हों) अच्छे होते हैं, जो वृक्ष कीडोंका खाया नहो, टूटवाला जला-कटा न हो और जो वृक्ष टेढा मेढा नहो उसको ही ग्राह्य और शुभ माना गया है। इन वृक्षोंसे भी केवल कार्तिक आदि आठ महिनोंमे ही काष्ठ लेना उचित है। जिस दिन काष्ठ लिया जाय उस दिन प्रशस्त पुष्य नक्षत्र हो आर गुणयुक्त शुभवार तिथि हो। शकुन देखकर उपवास पूर्वक प्रतिमाके लिये, काष्ठ लाये। वृक्षके नीचेकी समभूमिको पहले लीपले और गायत्री मन्त्र पढता हुआ वहा जल छिडकले। सुन्दर, श्वेत, नये वस्त्र धारण करके पहले वृक्षका पूजन गन्ध, धूप, पुष्पमाला आदिसे करले। फिर हवन करे। हवनमें देवदारू वृक्षकी लकडीसे काम ले। हवनके समय इस मन्त्रसे आहुतिया दे—

" ॐ प्रजापतये सत्यसन्धाय नित्यं सृष्टे विधात्रे च चरात्मने नमः ।
सान्निध्यमस्मिन्कुरु देव वृक्षे सूर्यावृतं मंडलमाविशस्व स्वाहा ॥"

इस तरह हवन कर चुकनेपर -वृक्षकी परिशान्तिके लिये यह श्लोक पढ़े :—

वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देवालय शुभम् ।
देवत्व यास्यसेतत्रच्छेद—दाहविवर्जितः ॥

कालेधूपप्रदानेन सपुष्पैर्बलिकर्मभिः ।
लोकास्त्वां पूजयिष्यन्ति ततो यास्यसि निर्वृतिम् ॥

इन श्लोक-मन्त्रोंसे वृक्षकी पूजा करके फिर कुल्हाड़ेकी पूजा करे । सायंकालको वहीं सोजाय । दूसरे दिन फिर पूजन करके ब्राह्मणों और भोजकोंको भोजन कराये और दक्षिणा दे । जिस समय ब्राह्मण—समुदाय स्वस्तिवाचन कर रहा हो उस समय वृक्षकी शाखाको काट ले । यदि काटा हुआ काष्ठ पूर्व दिशामें या ईशान दिशामें गिरे अथवा उत्तरमें गिरे — तोही शाखा काटना उत्तम है । इन सब दिशाओंमें पूर्व, ईशान और उत्तर दिशामें शाखाका गिरना उत्तम है । नैर्ऋति और आग्नेय दिशामें शाखाका गिरना अशुभ है । वायवी और वारुणी दिशामें शाखाका गिरना मध्यम है । पहले शाखाको थोड़ा काट के, फिर वृक्षपर कुठाराघात करे जिससे वृक्ष गिरतेही दो टुकड़ोंमें विभक्त हो जाय । पहले अवि-कम्प और अखन्द रूपमेंही वृक्षका गिरना शुभ होता है ।

भुजाकी ओर प्रस्थापित करना चाहिये। सूर्यनारायणके सम्मुख श्री और महाश्वेताका स्थान होता है। देवस्थानके बाहर द्वारपर (नन्दीश्वरके स्थानपर) दोनों अश्विनीकुमारोंको स्थापित करें।

द्वितीय कक्षामें राज्ञ और तोपको स्थान दें। तीसरी कक्षामें दोनों कल्मापपक्षियोंको प्रस्थापित करें। वहीं दक्षिणकी ओर जान्दक और माठरको स्थापित करें। रक्षिताओंको पश्चिम दिशामें रखें, उत्तरमें कुबेर और सोमका स्थान बनाये। इनसे भी उत्तरमें रेवन्तका और विनायकका स्थान बनाया जाय। अथवा अन्य किसी दिशामें उचित स्थान हो तो वहां इनका स्थान बनाले।

दाहिनी और बाईं ओर दो अर्घ्यमण्डल बनाने चाहियें, क्योंकि उदयकालमें दाहिनी ओर और अस्तकालमें बाईं ओरके मण्डलमें अर्घ्य देना होता है।

इससे आगे चतुस्र चतु: श्रृंग व्योमदेवका स्थान बनाना चाहिये जो सूर्यमंदिरके द्वारके सम्मुख हो।

सूर्यनारायणके मुख्य गर्भगृह मेंही सूर्यनारायणके सामने, आदित्याभिमुख दिण्डीकी प्रतिमा स्थापित करें।

सूर्यनारायणके मन्दिरमें देवताओंके स्थापन और स्थानकी यही विधि कही गयी है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे सूर्यमंदिर एवं प्रतिमा विधि वर्णन नामक एकोनत्रिंशोऽध्याय ॥ २९ ॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(३०) अर्चा निर्माण विधि

इतनी कथा सुनाकर वसिष्ठजीने कहा कि हे राजन्, अब तुम प्रतिमाओंका प्रकरण विस्तारके साथ सुनो।

प्रतिमाका दूसरा नाम अर्चा भी है। शास्त्रोंने ७ प्रकारकी प्रतिमाका वर्णन किया है जो भक्तोंका कल्याण करनेवाली है। १ स्वर्णमयी, २ रजतमयी, ३ ताम्रमयी, ४ मृण्मयी, ५ शैलजा (पाषाणमयी), ६ वार्क्षी (लकड़ीकी), ७ लेख्या (चित्रमयी)।

काष्ठकी प्रतिमाओंके लिये जिन वृक्षोंके काष्ठध्येय हैं उनके नाम ये हैं— १ महुआ, २ देवदारु, ३ राजवृक्ष, ४ चन्दन, ५ बिल्ववृक्ष, ६ आम, ७ खदिर, ८ चंपा, ९ नीम, १० श्रीपर्णी, ११ पनस, १२ सरल, १३ अर्जुन और १४ रक्तचन्दन। इन वृक्षोंकी लताओंसे निर्मित प्रतिमाएं शुभ होती हैं। इनमें दो—दो वृक्षोंके क्रमसे ४ वर्णोंके लिये काष्ठमयी प्रतिमा बनानेका विधान है। इसके बादके नीम आदि वृक्षोंके काष्ठकी प्रतिमा सब वर्णोंके लिये समान है।

दुग्धयुक्त वृक्ष वर्जित हैं—वे स्वाभाविकतयाही दुर्बल काष्ठवाले होते हैं। चौराहोंपर स्थित किसी वृक्षका भी काष्ठ प्रतिमाके लिये न लेना चाहिये। इसी प्रकारसे देवस्थानवाले वृक्षोंसे भी काष्ठ न

लेना चाहिये। वल्मीक, श्मशान, चैत्य, आश्रममें उगे हुए वृक्ष, पक्षियोंके घोंसलोंसे भरपूर, ठूंठवाले, नये उगे हुए, शस्त्र-वायु-अग्नि बिजली-हाथी आदिसे विकृत किये वृक्षोंसे भी प्रतिमाके लिये काष्ठ न लेना चाहिये। दो शाखाओंवाले, दुर्गन्धवाले, अपुत्रद्वारा लगाये गये और अकालमें फल-पुष्प देनेवाले वृक्षोंसे भी काष्ठ न लेना चाहिये। जो वृक्ष जलेजलाये हों, रूक्ष हों, खोखलोंमें पर-कोंट रखनेवाले हों उनको भी छोड़ देना चाहिये। एक, दो या तीन शाखाओंवाले वृक्ष भी अधम ही होते हैं। शुचि, एकान्त, अङ्गार कण्टक रहित, पूर्व तथा उत्तरकी ओर झुकी हुई भूमिमें उत्पन्न वृक्ष उत्तम होते हैं। नदी और जलाशयोंके निकट उत्पन्न पुष्पित वृक्ष (जो टेढ़े-मेढ़े न हों और छिद्र खोखले न रखते हों) अच्छे होते हैं; जो वृक्ष कीड़ोंका खाया नहो, ठूंठवाला जला-कटा न हो और जो वृक्ष टेढा-मेढा नहो उसको ही ग्राह्य और शुभ माना गया है। इन वृक्षोंसे भी केवल कार्तिक आदि आठ महिनोंमें ही काष्ठ लेना उचित है। जिस दिन काष्ठ लिया जाय उस दिन प्रशस्त पुष्य नक्षत्र हो और गुणयुक्त शुभवार तिथि हो। शकुन देखकर उपवास पूर्वक प्रतिमाके लिये, काष्ठ लाये। वृक्षके नीचेकी समभूमिको पहले लीपले और गायत्री मंत्र पढता हुआ वहां जल-छिड़कले। सुन्दर, श्वेत, नये वस्त्र धारण करके पहले वृक्षका पूजन गन्ध, धूप, पुष्पमाला आदिसे करले। फिर हवन करे। हवनमें देवदारू वृक्षकी लकड़ीसे काम ले। हवनके समय इस मंत्रसे आहुतियां दे—

" ॐ प्रजापतये सत्यसन्धाय नित्यं स्रष्ट्रे विधात्रे च चरात्मने नमः।
सान्निध्यमस्मिन्कुरु देव वृक्षे सूर्यावृतं मंडलमाविशस्व स्वाहा ॥"

इस तरह हवन कर चुकनेपर वृक्षकी परिशान्तिके लिये यह श्लोक पढ़े :—

वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देवालय शुभम्।
देवत्वं यास्यसेतत्रच्छेद—दाहनिवर्जितः॥

कालेधूपप्रदानेन सपुष्पैर्बलिकर्मभिः।
लोकास्त्वां पूजयिष्यन्ति ततो यास्यसि निर्वृतिम्॥

इन श्लोक-मन्त्रोंसे वृक्षकी पूजा करके फिर कुल्हाड़ेकी पूजा करे। सायंकालको वहीं सोजाय। दूसरे दिन फिर पूजन करके ब्राह्मणों और भोजकोंको भोजन कराये और दक्षिणा दे। जिस समय ब्राह्मण—समुदाय स्वस्तिवाचन कर रहा हो उस समय वृक्षकी शाखाको काट ले। यदि काटा हुआ काष्ठ पूर्व दिशामें या ईशान दिशामें गिरे अथवा उत्तरमें गिरे — तोही शाखा काटना उत्तम है। इन सब दिशाओंमें पूर्व, ईशान और उत्तर दिशामें शाखाका गिरना उत्तम है। नैर्ऋति और आग्नेय दिशामें शाखाका गिरना अशुभ है। वायवी और वारुणी दिशामें शाखाका गिरना मध्यम है। पहले शाखाको थोड़ा काट ले, फिर वृक्षपर कुठाराघात करे जिससे वृक्ष गिरतेही दो टुकड़ोंमें विभक्त हो जाय। पहले अवि-क्रम और अशब्द रूपमेंही वृक्षका गिरना शुभ होता है।

शाखा कटकर गिरनेपर यदि वृक्षसे पानी, मधु, रक्त, सर्पि-स्तैल आदि झरने लगें तो उस वृक्षको त्याग देना उचित है। कुठार पड़तेही जिसकी शाखामें मण्डल पड़ जायं उस वृक्षको सगर्भ जाने। पीत मण्डल हों तो गोधा, कृष्ण हों तो भुजंगम, पुण्ड्र वर्णका मण्डल हो तो पाषाण, कपिलवर्णका मण्डल पड़े तो गृहगोधिका, अग्निवर्णका मण्डल हो तो जल, मंजीठेके रंगका हो तो वृक्षको कृमि गर्भ जाने।

जिस वृक्षमें इस प्रकारके दोष निकलें उसकी लकड़ी न लेनी चाहिये। लकड़ी लेकर उसे कुछ दिनोंतक पत्तोंसे ढककर पड़े रहने देनी चाहिये। इसके पश्चात् मूर्ति बनानी चाहिये।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे अर्चा निर्माण विधि
नामक त्रिंशत्तमोऽध्याय ॥३०॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(३१) प्रतिमा निर्माण विधि

ऋषिराज वसिष्ठजीने इतनी कथा सुनाकर राजा बृहद्बलसे कहा कि अब हम क्रमसे प्रतिमा-लक्षण सुनाते हैं।

सूर्यकी प्रतिमाएं वही शुभ होती हैं जो एक, दो, तीन या साढेतीन हाथकी हों। अथवा प्रासाद और द्वारके अनुपातके क्रमसे जितना प्रमाण उचित बैठता हो उतनी ऊंची प्रतिमा बनावे।

एक हाथकी प्रतिमा सौम्य लक्षणयुक्त होती है; दो हाथकी धनधान्य प्रदाता होती है, तीन हाथकी प्रतिमा सब कामनाएं सिद्ध करनेवाली होती है और साढेतीन हाथकी सूर्यप्रतिमा सुभिक्ष तथा क्षेमकारिणी होती है।

जो प्रतिमा आगे, मध्यमें और मूलमें सुखद शोभन होती है उसको गान्धर्वी प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा बहुत धनधान्य दान करनेवाली होती है।

देवद्वारका जितना प्रमाण हो उसका आठवां भाग छोड़ दे। शेष परिमाणके एक भागसे पिण्डिका बनाये और दो परिमाणकी प्रतिमा रचे। अपने हाथकी अंगुलियोंके परिमाणसे ८४ अंगुलियों की प्रतिमा भली होती है। इसमें १२ अंगुल प्रमाणमें मुख और शेषमें शरीरकी रचना होती है। मुखका एक तिहाई भाग ठोड़ीके लिये और शेषभाग आंख, नाक और मस्तकके लिये रहता है।

नासिकाके तुल्य प्रमाणमें कान रहते हैं। इस प्रमाणकी प्रतिमाके नेत्र दो दो अंगुलके रहते हैं, इस प्रमाणके तिहाई भागमें नयन तारा और नयनताराके तिहाई भागमें दृष्टिबिंदु रहता है। ललाट और मस्तकका आकार समान रहता है। शिरका प्रमाण ३२ अंगुल रहता है। नासिकासे ग्रीवातक जितनी लम्बी रखी जाती है उतनी लम्बाई मुखमें हृदयतक रहती है। मुखके अनुमानमें नाभि और पेढूके बीचका अन्तर रहता है। मुखविस्तारके तुल्य ऊरु होते हैं। उनमें ऊपर कमर रहती है। उरु और जङ्घाके अनुपातके अनुसारही बाहु-प्रबाहु बनाये जाते हैं। गुल्फ अर्थात टखनोंकी गाठसे चार अंगुल नीचे पैर रखे जाते हैं जो छः अंगुल विस्तारवाले रहते हैं। इसमें अंगुलियां-अंगूठे तीन अंगुलके रहते हैं। पैरके अंगूठेके पासवाली बड़ी अंगुली अंगूठेके समानही लम्बी रखी जाती है। फिर, एकएक नखकी लम्बाईमें, कमी करके, अन्य अंगुलियां बनायी जाती हैं। पैरके नीचे भागकी लम्बाई १४ अंगुल रखते हैं। इस प्रकारके लक्षणयुक्त जो मूर्ति विनिर्मित होती है वही पूजनीय होती है।

कन्धे, भुजाएं, उरु, ललाट, भौंहें और नासिका—यह उभरे हुए रहने चाहियें। इसी प्रकार गण्डस्थल (कनपटिया) भी ऊंची रखनी चाहियें। विशाल धवल कमल समान नेत्र बनाये जाते हैं। लाल ओष्ठ रहते हैं। स्मित मुख, सुन्दर ठोड़ी और खिली हुई बाँछें जिस प्रतिमाकी रहती हैं वह शुभ होती है। शिरपर रत्न-प्रभासे चमकता हुआ मुकुट रहना योग्य है। कटक, अंगद, हार,

अव्यंग, पदबन्धादि तथा भूषणोंयुक्त मूर्ति शोभा देती है। न्यास सुबाहु मंडल और चमत्कृत कुंडल रखें तथा कांचनीमुद्रा युक्त हाथोंमें कमल धारण करनेवाली प्रतिमा बनायें।

ऐसी प्रतिमा अभीष्ट फल देनेवाली, कल्याण देनेवाली, आरोग्य देनेवाली और अभय प्रदान करनेवाली होती है।

प्रतिमाका कोई अंग प्रमाणसे अधिक हो तो राजाके लिये संकट पड़े, अंगोंमें हीनता हो तो प्रजामें अकल्याणका भय हो। कोई अंग छोटा हो तो चक्षुपीड़ा हो। मूर्ति कृश हो तो दारिद्र्य देती है। क्षतवाली हो तो सशस्त्र प्रहारोंका भय रहता है। कहीं टूटफूट हो तो प्रतिमा मृत्युभयकारिणी होती है। प्रतिमा यदि दक्षिणभुजाकी ओर झुकी हुई हो तो शीघ्रही आयुका क्षय होता है, बाईं ओर झुकी हुई हो तो स्त्रीका वियोग सुनिश्चित है। इसलिये सूर्यप्रतिमा सामान्य रूपमें सीधी बनी हुई हो तो ही उत्तम है। सारांश यह कि भास्करके भक्तोंको, लोकपरलोकमें भला चाहनेवालोंको शुभ-फल देनेवाली प्रतिमाही बनवानी उचित है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे प्रतिमा निर्माण विधि
नामक एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(३२) प्रतिमा कल्प वर्णन

यह परम कल्याणमयी कथा सुनाकर ऋषिराज वसिष्ठजीने कहा कि हे राजा वृहद्नल, अब तुम प्रतिष्ठा विधिकी कथा सुनो।

प्रतिमा निर्मित होजानेके पश्चात् विधिविधानसे अधिवासनकार्य सम्पन्न करें।

समुद्रसे, गंगाजीसे, यमुनाजीसे, सरस्वतीसे, चन्द्रभागासे, सिंधुसे, पुष्करसे और पहाड़ी झरनोंसे पवित्र जल प्रतिमाको स्नान करानेके लिये लाया जाय। जहातक सम्भव हो अन्य पवित्र नदियों, पुष्करों और सरोवरोंके जलभी ले आने चाहियें। यह जल स्वर्ण रजतादिके कलशोंमें भरकर लाये जायँ।

फिर सब रत्नादि, सर्व बीजोषधि आदि, सुगन्धिया और स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए पुष्प तथा पुष्पोंकी मालाए भी मगा लेनी चाहियें।

मुख्यमुख्य प्रकारके चन्दन और गन्धें मंगा लेनी उचित हैं।

ब्रह्मी, सुवर्चला, मोथा, विष्णुक्रान्ता, शतावरी, शखपुष्पी, हल्दी, प्रियगु और दूर्वादिको समझदार आदमी विधिसहित लायें।

वड, पीपल, शिरीष आदिके पत्तों और कुशोंसे युक्त उक्त-तीर्थजलपूरित घडोंसे सूर्यनारायणको स्नान कराया जाय। स्नानके

लिये जलपूरित कलश स्वर्ण, चांदी, ताम्र या मृत्तिकाके बने हुए रहने चाहियें। उनमें थोडे चावल, सर्वौषधि और थोडा सुवर्ण भी डाल देना चाहियें। ऐसे आठ घडोंसे आठ शाकद्वीपीय ब्राह्मण सूर्यनारायणको स्नान करायें। शाकद्वीपीय ब्राह्मण न मिलें तो दूसरे पौराणिक ब्राह्मण ये कार्य करायें। उस समय गायत्रीमंत्रोंसे भी जलको पवित्र कर लेना उचित है।

स्नानानन्तर पक्की ईंटोंकी वेदी बनाकर उसपर कुशा बिछा दे। फिर इस वेदी पर सूर्यनारायणकी प्रतिमाको पधराकर वस्त्रसे ढक दे। तदनन्तर अभिषेक करें। पहले सर्वौषधि और आमलकके जलसे अभिषेक करे जिसका यह मंत्र है—

देवास्त्वामभिषिंचन्तु ब्रह्मा विष्णु शिवादयः।
व्योमगगाम्बुपूर्णेन आद्येन कलशेनतु॥

मरुतश्चाभिषिंचन्तु भक्तिमन्तो दिवस्पते।
मेघतोय सुपूर्णेन द्वितीय कलशेनतु॥

सारस्वतेन तोयेन पूर्णेन सुरसत्तमाः।
विद्याधरा अभिषिंचन्तु लोकपालाः समागताः॥

सागरोदक पूर्णेन चतुर्थ कलशेनतु।
वारिणा परिपूर्णेन पद्मरेणु सुगन्धिना॥

पचमेनाभिषिंचन्तु नागाश्च कलशेनते।
हिम वद्धेमकूटाद्या अभिषिंचन्तु पर्वताः॥

निर्झरोदक पूर्णेन षष्ठेन कलशेनतु ।
सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन कलशेन दिनस्पते ॥
सप्तमेनाभिषिंचन्तु ऋषयः सप्तखेचराः ।
वसवश्चाभिषिंचन्तु कलशेनाष्टमेन ते ॥
अष्टमंगल युक्तेन देव देव नमो स्तुते।

हे देवाधिदेव सूर्यनारायण व्योम गङ्गाके जलसे पूरित इस घटसे आपका ब्रह्मा विष्णु महेशादि अभिषेक करते हैं, आप स्वीकार करें।

दूसरे घड़ेसे जो मेघजलसे पूरित है, आपका मरुत्गण अभिषेक करते हैं, स्वीकार कीजिये।

हे सुरोत्तम ! सरस्वती आदि नदियोंके जलोंसे पूरित तीसरे घड़ेसे विद्याधर आपका अभिषेक करते हैं, स्वीकार कीजिये।

सागरके जलसे पूरित चतुर्थ घड़ेसे, जिसमें सुगन्धियां डाली गयी हैं, आपका लोकपाल अभिषेक करते हैं।

जलपूरित और पद्मरेणु सुवासित पांचवें घड़ेसे आपका नाग-गण अभिषेक करते हैं।

छटे घड़ेसे जिसमें निर्झरोंका जल है आपका पर्वतराजादि अभिषेक करते हैं।

सातवें घड़ेसे, जिसमें सब तीर्थोंका जल है, आकाशमें विचरण करनेवाले सप्तर्षिगण आपका अभिषेक करते हैं, स्वीकार कीजिये।

हे दिवस्पते, इस आठवें घड़ेके जलसे, आपका आठों वसुगण अभिषेक करते हैं, आप स्वीकार कीजिये। फिर "आचमस्व" यह पद पढता हुआ वर्द्धनीपात्रसे प्रतिमाके आगे तीन धाराएं छोड़े।

अभिषेकके पश्चात्, कुछ दूरीपर पवित्र स्थानपर चावल बिछाकर तोलियासे पौंछी हुई सूर्यप्रतिमाको पधरा दे। मण्डपको पताका, तोरण, छत्र, ध्वजा और मालाओंसे अलंकृत करे। मण्डपपर पुष्प बखेरकर बीचमें कुशासन बिछाकर देवप्रतिमाको विधिसे पधरा दे। यहापर आह्वानादि शोडषोपचारसे पूजा करे। फिर शान्तिकर्म करे। पुनः प्रतिष्ठा की हुई देवप्रतिमाकी रक्षाके लिये अधिवासन करे।

देवागारके ईशान कोणमें मण्डप बनाकर कुशा बिछा दे। उसपर अलंकार और श्वेत वस्त्र पहनी हुई प्रतिमाको (महाश्वेता मंत्रका पाठ करते-करते) पधरा दे। दक्षिण और वाम पार्श्वमें सूर्य नारायणकी दोनों भार्याओंको (निक्षुभा तथा राज्ञीको) भी प्रस्थापित करले। प्रनेशकी और दण्डनायक और पिंगलको भी स्थापित करे। वहा रात्रिको शैयापर सूर्य प्रतिमाको पौढ़ाकर रातभर जागरण करे। चारों ओर वेदस्तुति पाठ और कीर्तन होता रहे प्रातःकाल होनेपर विधिके साथ चारों दिशाओंको मंत्रित करे फिर ब्राह्मणोंको और याजकोंको भोजन कराये। अन्तमें दक्षिणा दानके अनन्तर स्वस्तिवाचनके साथ दीनोंको, अंधोंको और कृपण जनोंको अन्न देकर तृप्त करे। फिर देवस्थानके गर्भगृहमें पिंडिका बनाकर उसके ऊपर स्वर्णादिके रथमें (जो सात घोड़े होता है) सूर्य नारायणको, विधानसे श्वेत सरसोंयुक्त अर्घ्यादि देते हुए, पधराये। इस समय यजमानभी सूर्यनारायणकी प्रतिमाको सहारा देता रहे। शंखदुंदुभि आदिके निर्घोषके साथ पुण्याहशब्द ध्वनिके

मध्यमें देवालयकी प्रदक्षिणा दिलानेके अनन्तर देवप्रतिमा निज स्थानपर प्रतिष्ठित की जाय। जिस दिन देवस्थानमें प्रतिमाकी स्थापना की जाय वह दिन, तिथि, लग्न, मुहूर्त आदि शुभ हों।

प्रतिमा न तो अधोमुख रहजाय, न चर्ध्वमुख होजाय। इस या उस पार्श्वमें भी झुकी हुई न हो। सूर्यपत्नियोंको भी निज निज स्थानपर विराजमान करा दे। इनके बाद पिंगलको दक्षिण पार्श्वमें और दण्डनायकको वाम पार्श्वमें स्थापित कर दे। तदनन्तर यजमानकी सुखशान्तिके लिये शान्तिकर्म होना चाहिये। सब देवताओंके लिये अग्निमें आहुतियां दी जायं। तदनन्तर मोदक, अपूप, उल्लापिका, शष्कुलीसे, दूधमें मिलाकर, दशों दिशाओंके दिक्पालोंको बलि दे। अन्तमें विप्रों और याजकोंको दक्षिणा दे जिसका महापुण्य है। सूर्यनारायणने स्वयम् कहा है कि इस विधिसे स्थापित की हुई मेरी प्रतिमा वृद्धि करनेवाली होती है और वहा मेरा सान्निध्य सदा प्राप्त होता है। चारों वर्णोंमें किसीभी वर्णका जो भक्त सूर्यनारायणकी स्थापना करता है वह ससार सागरको तैरकर सूर्यलोक पहुच जाता है। जो मनुष्य स्थापनाके समय सूर्याधिवासनका उत्सव देखते हैं, वे सात जन्मतक नीरोगता पाते हैं। इस प्रसंगपर जो जन तीन राततक वहा उपासना करते हैं वे परम गति पाते हैं। जो जन अपने द्वारा या अन्य किसीके द्वारा स्थापित होती हुई सूर्यप्रतिमाका दर्शन करता है वह सब पापोंसे छूट जाता है। सूर्यनारायणकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करनेवाला दसों अश्वमेधों और सैकड़ों वाजपेय यज्ञोंका फल पाता है। देवस्थान

बनानेकी जितने दिनतक कीर्ति रहती है तबतक वह भक्त सूर्य-लोकमें निवास करता है। एक सूर्यपूजासे ही जो फल मिलता है वह अन्य देवताओंके लिये किये गये व्रत-उपवास-दानादिसेभी प्राप्त नहीं होता। महापाप करनेके बाद भी जो सूर्योपासना करने लगता है, वहभी विगलित-पापराशि होकर सूर्यलोकमें जाता है। उसकी काया कभी कोढ आदिसे दूषित नहीं होती और वह तबतक स्वर्गमें स्थान पाता है जबतक वह सूर्यमंदिर रहताहै। इस तरह सूर्यनारायणके स्थानमें रहकर उपासना करनेवाला सुख पाता है, श्रीका भागी होता है और अन्तमें कल्पांतक सूर्य-लोकमें वास करता है। जो देवस्थान बनाता है उसकी कीर्ति-पीढियोंतक अमर रहती है। वह अप्रमेय कामनाओंकी पूर्तिके साथ स्वर्गसुख भोगकर पुनः, जब भूमिपर आता है तो चक्रवर्ती राजा होता है। जो द्वादशात्मा सूर्यनारायणके मन्दिर बनाते हैं, वे मरनेपर भी अमरकीर्तिमय शरीर लिये भूमिपर विद्यमान रहते हैं।

इस तरह देवर्षि नारद श्रीकृष्णके सुपुत्र सांबको उपदेश देकर चले गये और सांबने भी चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यनारायण का शाश्वत-स्थान निर्मित करा दिया।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे प्रतिमा कल्प नामक
द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

ॐ सिद्धगणेशायनम

(३३) ध्वजारोपण विधि

देवर्पि नारदजी प्रतिमाकल्पकी कथा सुनाकर बोले कि यदुनन्दन अब हम ध्वजारोपणकी विधि कहते हैं। पुराकालमें देव दानव महायुद्धके समय, विजयप्राप्तिकी अभिलापावाले, देवताओंने अपने अपने वाहनोंपर ध्वजा और उनके चिन्ह परिकल्पित किये थे। लक्ष्म, चिन्ह, ध्वजा, केतु यह झण्डेके अन्य नाम हैं। पताकाका बास सीधा और व्रणरहित होना चाहिये। प्रासादकी ऊंचाईके बराबर या फिर चार, आठ, दश, सोलह और बीस हाथ लम्बा बास, ध्वजदण्ड होना चाहिये। पाच, सात आदि विषम संख्यक ध्वजदण्ड न रखना चाहिये। टेढा ध्वजदण्ड हो तो पुत्रनाश, व्रण युक्त हो तो धननाश और विषम संख्यक हो तो रोग-प्राप्तिका भय है। दो हाथके बासकी संज्ञा जय, चार हाथके बासकी जयत, छ हाथके बासकी जैत्र, आठ हाथके बासकी शत्रुहन्ता, दश हाथके बासकी जयावह, बारह हाथके बासकी नन्द, चौदह हाथके बासकी उपनन्द, सोलह हाथके बासकी इन्द्र, अठारह हाथके बासकी उपेंद्र और बीस हाथके बासकी संज्ञा आनंद है। इससे अधिक लम्बा ध्वजदण्ड न लेना चाहिये। ध्वजाका वस्त्र देवागारके कलशके तृतीय भागपर फहराने योग्य वस्त्रका होना चाहिये जो सुन्दर और घण्टाध्वनि युक्तभी हो। ध्वजवस्त्रपर सुनहरे, रुपहरे अथवा मणिमय रूपमें देवचिन्ह बनाया जाय। अथवा रंगमे देवचिन्ह अङ्कित कर लिया जाय। विष्णुकी ध्वजापर

गरुड़, शंकरकी ध्वजापर वृषभ, ब्रह्माकी ध्वजापर कमल, सूर्य-नारायणकी ध्वजापर व्योम, वरुणकी ध्वजापर हंस, कुबेरकी ध्वजापर नर, कार्तिकेयकी ध्वजापर मयूर, गणपतिकी ध्वजापर मूषक, इन्द्रकी ध्वजापर हाथी, यमकी ध्वजापर भैंसा, दुर्गाकी ध्वजापर सिंहका चिन्ह रहता है। सारांश यह है कि जो जिस देवताका वाहन है वही उसका ध्वज चिन्ह है। सूर्यनारायणकी ध्वजाका दण्ड स्वर्णका होना चाहिये और व्योमचिन्हके नीचे पंचरंगी पताका रहनी चाहिये। इस पताकेमें घुंघरू आदि भी लगा देने उचित हैं। फिर सर्वौषधि आदिसे विधिपूर्वक स्नान कराकर ध्वजाको बीचमें बांधे। शुभ वेदी बनाकर कलश स्थापन पूर्वक ध्वजाको स्थापित करे। फिर एक रात्रि पूजा–कीर्तन और जागरण पूर्वक ध्वजाके नीचे अधिवासन करे। पुष्पहारादि चढाकर दिक्पालोंको बलिदानभी देले। दूसरे दिन प्रातःकाल पूजन और ब्राह्मण भोजना-दिके पश्चात् शुभ मुहूर्तमें वेदमंत्र ध्वनिके मध्यमें ध्वजाको देव स्थानपर चढा दे। इस प्रकारसे देवालयपर ध्वजा आरोपित करने वालोंकी श्रीवृद्धि होती है और उनको अन्तमें शुभ गति प्राप्त होती है। जिस देवस्थानपर ध्वजा नहीं होती वहां आर्पित की हुई वस्तुको देवता इच्छा तक नहीं करते।

ध्वजा चढाते समय यह मंत्र पढना चाहिये —

"ॐ एह्येहि भगवन्नीश विनिर्मितो परिचर वायु मार्गानुसारिणा श्रीकर श्रीनिवास रिपुध्वसकारिन् पक्षिनिलय सर्व देवता ॥ सतत कुरु सान्निध्य शान्ति स्वस्त्ययन चमे भवतु सर्वविघ्ना अपसरन्तु स्वाहा ॥"

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे ध्वजारोपण
नामक त्रयस्त्रिंशोऽध्याय. ॥ ३३ ॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(३४) सांवत्सरी पूजा विधि

ऋषिराज वसिष्ठजी बोले कि हे राजा बृहद्बल, साम्बने देवर्षि नारदजीसे पूछा कि महाराज, मन्दिरकी प्रतिष्ठा और ध्वजारोपणोपरान्त वार्षिकी पूजाका क्या विधान है ?

देवर्षिने कहा, वर्षदिन होजानेपर पहले स्नानकर्म कराये। सब तीर्थों आदिसे पूर्वोक्त रीतिसे जल लाकर उसी पूर्वविधिसे से देव प्रतिमाको स्नान कराये। न हो तो मनसे कल्पना करके जलोंमें पुष्कर, नैमिष, कुरुक्षेत्र, पृथूदक तीर्थों तथा गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चन्द्रभागा, सिंधु, नर्मदा, पयोष्णी, ताम्रा, क्षिप्रा, वेत्रवती नदियों और समुद्रोंके जलोंका आह्वान करे। इस रीतिसे स्नानके पश्चात् भगवानकी विधिसे पूजा करके प्रणाम करे। फिर धूप दीप दानादि सहित तीन रात, सात रात या अर्धमासतक देवताका सान्निध्य और अधिवास करे। तदनन्तर लोककल्याणार्थ देवयात्राका उत्सव करे। घुंघरू लगे हुए सुन्दर रथमें, (ब्राह्मणोंको भोजन कराके तथा दक्षिणा देकर) देवप्रतिमाको विराजमान कराके पहले मन्दिरकी प्रदक्षिणा कराये। फिर नगरमें उचित मार्गोंपर ले जाय। इस प्रकार प्रतिवर्ष रथयात्रा करनेसे प्रजा सुखी होती है और राजा जयी होता है। सबलोग रोगरहित रहते हैं

और पशुओंमें भी शान्ति रहती है। रथयात्रा करानेवाला स्वर्ग-का भाजन बनता है। जैसा पहले ही कह चुके हैं, हे सांब, उसीके अनुसार ब्रह्माजीने सूर्यनारायणके रथकी कल्पना संवत्सरात्मक की है। यह रथ सब रथोंमें श्रेष्ठ है। ब्रह्माजीद्वारा प्रकल्पित सूर्यनारायणके रथकी नकलपर विश्वकर्माने अन्य देवोंके रथ पीछेसे बनाये हैं। फिर वैवस्वत और इक्ष्वाकुको मानव शरीरमें अवतारी पुरुष होनेपर—विश्वकर्माने रथ दिये थे। इस प्रकार लोक-परलोकमें रथकी प्रवृत्तिका हेतु सूर्यनारायणका रथही है। हे सांब, सूर्यनारायणकी रथयात्रा करनेमें भूल न करे। सूर्यनारायण अपने तेजोमय रूपमें रथसहित दर्शन नहीं देते हैं, क्योंकि मनुष्यकी दृष्टि उसको देखनेमें असमर्थ रहती है। अतः पृथिवीपर इस रथयात्राका दर्शन करके कृतकृत्य होजाते हैं। अन्य देवताओंके लिये रथयात्राका विधान नहीं है।

अतः प्रजाके कल्याणके निमित्त प्रतिवर्ष स्वर्ण, चांदी अथवा लकड़ीका सुदृढ पहियों वाला रथ बनाकर रथ यात्रा निकाले। रथमें सूर्य नारायणको विराजमान कराकर शुभलक्षण सम्पन्न और सधाये हुए घोड़े जोड़े। (घोड़े न हों तो बैल जोड़ले—अथवा मनुष्यही उसको खींचने लग जायें) आचार्य भी कुंकुमादि लगाकर चामर हाथमें लिये हुए रथमें बैठ जाय। फिर, विधिसे पूजन और ब्राह्मण भोजनानन्तर, सूर्यकी रथयात्रा निकाले। ब्राह्मणोंको चिन्तित, भग्नाशा या क्षुधित छोड़कर रथयात्रा करनेवाले यजमानके पितरगण स्वर्गसे पतित होते हैं। सूर्योत्सव और यज्ञादि, दक्षिणा-

हीन स्वीकार्य नहीं होते हैं। इस लिये भोजन दक्षिणा आदिके पश्चात् इस मंत्रसे बलि दे:—

> बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्यावसवस्तथा।
> मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगाग्रहाः॥
> असुरा यातुधानाश्च रथस्था देवताश्रयाः।
> दिक्पाला लोकपालाश्चयेच विघ्नविनायकाः॥
> जगतः स्वस्ति कुर्वाणास्तथा दिव्यमहर्षयः।
> मा विघ्नो माच मे पापं माच मे परिपंथिनः॥
> सौम्या भवंतु तृप्ताश्च देवाभूतगणस्तथा॥

बलि दे चुकनेके पश्चात् "वामदेव मानस्तोकरथन्तर" और "आकृष्णेन रजसा" इत्यादि ऋचाएँ पढ़े। अनन्तर पुण्याह वाचन और सुन्दर बाजोंके साथ रथको मार्गोपर चलाये। रथको धीरे धीरे भीड़से बचाकर चलाये जिससे उसका कोई अंग टूट न जाय। रथ भंग हो तो ब्राह्मणोंको, इक्षा भंग हो तो क्षत्रियोंको, रथकी तुला भंग हो तो वैश्योंको और शमी भंग हो तो शूद्रोंको संकट पड़नेका भय है। युग भंग हो तो देशमें अनावृष्टि हो। पीठ भंग हो तो प्रजाजनोंको भय होता है। रथका चक्र टूट जाय तो शत्रुका चक्र चलनेका भय होता है। यदि ध्वजा टूट जाय अथवा गिर पड़े तो राजसिंहासनके पतनकी आशंका होती है। यदि सूर्य प्रतिमा क्षतिग्रस्त हो जाय तो राजाकी मृत्यु होती है। छत्र टूटनेसे युवराजके शिर विपत्ति आती है। इस प्रकारका कोई भी विघ्न हो तो रथयात्राको रोककर पुनः बलिकर्म और अरिष्ट शांति

करे। फिर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। ईशान कोणमें होमकुंड बनाकर देवता और ग्रहोंकी शांतिके लिये नाम ले-लेकर हवन करे। आग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा— इस क्रमसे आहुतियां दे देकर ये मंत्र पढ़ता जायः—

स्वस्त्यस्त्विहच विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेतथैव च।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शांतिरस्तु वै॥
शन्नोस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे।
श प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदाऽमनिचास्तु मे॥
भूशान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च।
स्वश्चैवास्तु तथा शान्तिः शान्तिः सर्वत्र वास्तुनः॥
त्वमेव जगतः स्रष्टा पोष्टचैव त्वमेव हि।
प्रजाः पालय देवेश शान्ति कुरु दिवस्पते॥

अपनी जन्मराशिसे दुष्टस्थानमें स्थित ग्रहोंको मालूम करके, उनकी प्रसन्नताके लिये समिधा होम करे। समिधा एक-एक प्रदेश लम्बी होनी चाहियें।

सूर्यके लिये आककी, चन्द्रमाके लिये पलाशकी, मङ्गलके लिये खदिरकी, बुधके लिये अपामार्गकी, बृहस्पतिके लिये पीपलकी, शुक्रके लिये गूलरकी, शनैश्चरके लिये शमीकी, राहूके लिये दूर्वाकी और केतुके लिये कुशाकी समिधा कल्पना करे।

उत्तम गौ सूर्यके लिये, शंख चंद्रके लिये, मंगलके लिये लाल रंगका बैल, बुधके लिये स्वर्ण, बृहस्पतिके लिये पीत वस्त्र,

शुक्रके लिये घोडा, शनिके लिये नीली गौ और लोह, राहुके लिये खांडयुक्त खीर, केतुके लिये बकरी देना चाहिये।

सूर्यके लिये गुडके अपूपेका, सोमके लिये घृतमय पायसका, मङ्गलके लिये हविष्यान्नका, बुधके लिये खीरका, बृहस्पतिके लिये दहीभातका, शुक्रके लिये घृतका, शनिको तिलकी पीठी या उड़दकी पीठीका, राहूके लिये मांसका, केतुके लिये बहुरंगमय भातका भोजन दिया जाता है।

जैसे शत्रुके तीरके प्रहारकी रोकथाम कवच धारण करनेसे होती है, वैसे ही दुष्टग्रहोंके आक्रमणका निवारण शांति कर्मसे होता है।

अहिंसापरायणों, इन्द्रियदमन करनेवालों, धर्मसे धन कमानेवालों और नित्य शुभ नियमोंका पालन करनेवालोंपर ग्रहोंका सदा अनुग्रह रहता है।

ग्रह, गाय, नृप और विशेषतः ब्राह्मण — ये सब पूजासे प्रसन्न होकर अपनोंको पूजित बनाते हैं, अपमान करनेवालोंको भस्म कर देते हैं।

जैसे यंत्रका प्रहार यंत्रसेही निवारित होता है, वैसेही ग्रहशान्तिसे पैदा हुए उपद्रवोंका शमन हो जाता है। यज्ञ करनेवालों, सत्यवादियों, उपवासादि परायणों और जपतप करनेवालोंको ग्रहपीड़ा नहीं होती।

उपर्युक्त रीतिसे ग्रहशान्ति कर्म आदिके पश्चात्, रथको संभालकर, पुनः सूर्यकी रथयात्रा पूरी करे। फिर रथसे उतारकर सूर्यनारायणको देवालयके निज मण्डलमें स्थापित करके विधिसे पूजन हवन करे। इस रीतिसे सूर्यनारायणका रथोत्सव करनेवाला परार्धतक सूर्य-लोकमें निवास करता है। उसके कुलमें कोई रोगी और दरिद्री नहीं होता। देवालयकी स्थापनाके पश्चात् यदि प्रथम वर्षसे रथयात्रा न हो सके तो फिर बारहवें वर्षसे अवश्य करनी चाहिये। नारदजीसे, श्रीकृष्णकुमार सांबने, यह उपदेश सुनकर विधिसे सूर्यनारायणकी रथयात्राका उत्सव मनाया।

इति श्री हिन्दी सङ्क्षिप्तपुराणे प्रथम धार्मिक सूर्यरथयात्रा विधिनामक चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥३४॥

ॐसिद्धगणेशायनम.

(३५) प्रतिवर्षकी रथयात्राएं

वसिष्ठजी बोले कि हे राजन्, देवर्षि नारदने सांबपर अनुग्र
रके पुनः रथयात्रा करनेकी जो रीति बतायी थी, वह भी तु
नाता हूं—तू ध्यानसे श्रवण कर। मैंने तुझे पहलेही सुना दिय
ह कि सूर्यनारायणके रथमें कितने देवताओंकी परिकल्पना की
जाती है। बुद्धिमान उन सबकी स्थापना मनसे, रथमें, करे। सूर्य
नारायणकी पत्नियां राज्ञी और निक्षुभा हैं— जो द्यौ और पृथिवी
स्वरूपिणी हैं। सूर्यनारायण और उनकी इन दोनों पत्नियोंके साथ
ही दण्डनायक, पिंगलादिकी भी मानसी स्थापना करनी चाहिये।
इसी प्रकारसे दिक्पालों और लोकपालोंकी मानसी स्थापना भी करे।

सूर्यनारायणका मण्डल ऋग्-यजु-साम-मय है क्योंकि सूर्य
नारायणही वेदमूर्ति है; उनके रथके सातों घोड़े वेदोंके सातों छन्द-
स्वरूप हैं, अतः सूर्यनारायणही वेदछन्दमय हैं। इस लिये रथको
वेदवादी विद्वान ब्राह्मणोंसे ही चलाना चाहिये। उपवास किये
हुए वेद-वेदाङ्ग पारंगत ब्राह्मणोद्वारा रथ परिचालित होनेमें सबके
लिये, रथयात्रा, कल्याणकारिणी होती है। सूर्यनारायण देवाधि-
देवभी हैं और सर्वदेवमयभी हैं; उनके रथमें अन्य देवताओंका भी
निवास रहता है। इसलिये उन सब देवताओंको, दिग्पालोंको और
सूर्यनारायणके अनुचरोंको भी, रथयात्रा प्रारम्भ करते समय,
यथोक्त रीतिसे पूज लेना चाहिये। पहले सूर्यनारायणकी पूजा

किये विनाही यदि अन्य देवताओंकी पूजा करली जाती है तो उसमें पाप लगता है और इस अज्ञानकृत पूजाको देवता स्वीकार नहीं करते हैं। रथयात्राके समय जो जन सूर्यभक्त दीक्षितोंके दर्शन कर लेते हैं वे कल्मपरहित होजाते हैं। तिथियोंमें पौर्णिमा और अमावस्या तिथियां महान हैं। इन दिनोंमें दान-पुण्यका फलभी अधिक होता है। इन पौर्णिमा और अमावस्याओंमेंभी आषाढ़ी, कार्तिकी और माघी तिथियां अधिकतर पुण्यमय मानी गयी हैं। कार्तिकोंमें भी महाकार्तिक (पुरुषोत्तम मास) उत्तम है। इस प्रकार कालयोगमय अवसरोंको जानकर जो कोई भक्त सूर्यनारायणके दर्शन भी करता है उसको भी महत्पुण्य होता है। जो भक्त ऐसे पुण्य समयमें उपवास-व्रत करते हैं और सूर्यनारायणकी भक्तिभावभरित पूजा करते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं। प्राणियोंके कल्याणके लिये ही, विशेष रूपसे, उपर्युक्त पुण्य प्रसङ्गोंपर नारायण प्रतिमामें अवस्थित रहते हैं केश मुंडाकर, स्नान, दान, जप, होम और देवकार्यमें प्रवृत्त होनेवाला दीक्षित कहलाता है। सूर्यभक्तोंको तो सदा शिरके बालों को मुंडवाते रहनाही चाहिये। सूर्यकी भक्ति चारों वर्णोंके लिये ही है। उपर्युक्त विधिसे सूर्योपासना करनेवाले दीक्षित कहाते हैं और ये महात्मागण शुभगतिको प्राप्त होते हैं।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे प्रतिवार्षिक रथयात्रा वर्णन नामक पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(३६) धूप और अर्घ विधि

इतनी कथा वसिष्ठजीसे सुनकर महाराज बृहद्बलने पूछा कि गुरुदेव, यह रथयात्राका शुभप्रकरण आपने मुझे सुनाकर कृतार्थ कर दिया है। हे सुव्रत! अब आप धूप दीपादिकी विधि भी मुझे सुनाइये।

वसिष्ठजी बोले कि राजन्! अब हम अग्नि, धूप विधि एवं स्नान आचमन और अर्घ दानादि क्रियाओंका वर्णन करते हैं। शरीरमें मृत्तिका लगाकर, तीन बार नदी-तड़ाग-कूपादिपर स्नान करके भक्तजन, श्वेत धुले हुए वस्त्र पहन लें। फिर गायत्री मंत्र जपते २-रीतिसे ३ आचमन करें। जलमें रहते हुए आचमन न करना चाहिये; आचमन सदा जलसे बाहर निकल करही करना चाहिये। जलमें सूर्य, अग्नि, नागदेवी, सरस्वतीका वास माना गया है। अतः जलसे निकलकर बाहर आनेके पश्चात् पवित्र स्थानपर बैठकर ही आचमन करना उचित है। हाथ-पैरोंका पुनः प्रक्षालन करके, ऊंकड़ू बैठकर अन्तर्जानू होकर आचमन करना उचित है। तीन बार आचमन करके, तीन बार मार्जन और अभ्युक्षण करे। मूर्द्धा, कण्ठ और अन्तरात्माको स्पृश्य करनेवाले आचमनोंसे शौचेच्छु पवित्र हो जाता है। जो नास्तिक जन मोहवश आचमन बिना किये ही क्रिया करते हैं उनकी इस प्रकार की हुई सब क्रियाएं

विफल हो जाती हैं। यह बात संशय-रहित है। देवतागण पवित्रता चाहते हैं, यह बात वेदोंने बतादी है। नास्तिकों और अशुचोंको ेवता स्वीकार नहीं करते हैं। ऋषिगण और पितरगण भी—अन्य ुचिता चाहनेवाले भी—यही शौचविधि मानते हैं। आचमनपूर्वक ेवालयमें बैठकर प्राणायाम करे। शिरको भी वस्त्रसे ढकले। फिर नेक प्रकारके पुष्पोंसे सूर्यनारायणकी पूजा करे। मंत्रका जप करके अग्निमें गुग्गुलकी धूप दे। फिर पुष्पांजलि मंत्रयुक्त करके सूर्यनारायणकी प्रतिमाके मस्तकपर अर्पित करे और यह श्लोक पढे:—

ॐ व्रतेन नित्य व्रतिनो वर्द्धयन्ति देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे।
तस्यादित्यस्य शरणमहंप्रपद्ये यस्तेजसा प्रथममाविभाति॥

शास्त्रोंमें धूप देनेकी पांच वेलाएं बतायी गयी हैं—जपकी भी पांच वेलाएं हैं। महाविद्याएंभी पांच हैं। प्रभातवेलामें, जब तारे दिखाई दे रहे हों, दण्डनायकको धूप देनी चाहिये, प्रत्यूष कालमें राज्ञीको और तीनों समयोंमें सूर्यनारायणको धूप देनी चाहिये।

प्रातःकालमें, जब अर्द्धोदित सूर्यनारायण रहते हैं तब, मिहिर नामसे धूप दे, मध्यान्हकालमें ज्वलन—नामसे सूर्यनारायणको धूप दे और जिस समय सूर्यनारायण अर्द्धास्त अवस्थामें हों (सायंकालमें) उस समय वरुण नामसे सूर्यनारायणको धूप दे। धूप दे-चुकनेपर केसर—रक्तचन्दन—कुंकुम मिश्रित जलमें पद्म—कनेर—लालकमलादिके पुष्प डालकर ताम्रपात्रमें अर्घजल तैयार करके हाथमें लेकर

घुटनोंके बल बैठ जाना चाहिये। फिर दोबारा धूप देकरयह मंत्र पढ़कर आह्वान करना चाहिये।

> एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
> अनुकम्पय माभक्त गृहाणार्घं दिवाकर ॥

फिर आदित्य हृदयका जप करते २ सूर्यको अर्घ देना चाहिये—

> ॐ नमो भगवते आदित्याय वरिष्ठाय वरेण्याय ब्रह्मलो-
> कैक कर्त्रे। ॐ ईशानाय पुराणाय पुराण पुरुषायच।
> ॐ सोमायच ऋग्यजु सामाथर्वणे ॐ भू: ॐ भूव:
> ॐ स्व: ॐ मह: ॐ जन: ॐ तप: ॐ सत्यम्।
> ॐ ब्रह्मणे भध्य परत आदित्याय स्वाहा ॥

अर्घ दानके अनन्तर गायत्री महामंत्र पढकर धूपपात्रके चारों ओर जल छिड़के और फिर पात्रको उठाकर यह ऋचा पढते-पढते सूर्यनारायणको धूप निवेदित करे—

> त्वमेकोरुद्राणा वसूना पुरातनो देवाना
> गौर्भिरभिष्टत. शाश्वतो दिवि।

(यह प्रातःकाल धूप निवेदन-मंत्र है)

> ॐ नमो ज्वालामालाय तद्विष्णो परमपद सदा
> पश्यति सूर्योदिवी चचक्षुराततम् ॥

(यह मध्यान्हकालमें धूप निवेदित करनेका मंत्र है)

> ॐ नमो वरुणाय, ॐ आकृष्णेनरजसा वर्तमानो निवेशयन्न
> मृत मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सवितारथना दे ो य ति भुवनानि पश्यन् ॥

(यह सन्ध्यासमय धूप देनेका मंत्र है)

इनमंत्रोंको पढता हुआ धूपपात्र लेकर मन्दिरके गर्भगृहमें जाकर ये मंत्र पढपढकर सबको धूप दे—मिहिराय नमः, राज्ञे नमः, निक्षुभायै नमोनमः, दण्डनायकाय नमः, पिंगलाय नमः, वोपाय नमः, कल्माषाय नमः, गरुत्मने नमः।

फिर प्रदक्षिणा करते हुए दिग्देवताओंको धूप देना चाहिये—

दण्डिनेनमः, रेवन्ताय नमः, अनुचरायनमः, पूर्वे इन्द्राय नमः, दक्षिणे यमाय नमः, पश्चिमे वरुणाय नमः उत्तरे कुबेराय नमः। उत्तर सोमाय नमः, ईशाने ईश्वराय नमः, अग्नये अग्नये नमः, पितृभ्यो नम, चन्द्रमासे वायवे नमः, मध्ये नारायणाख्याय सूर्याय परमात्मने नमः, रुद्रेभ्यो नमः, मरुद्भ्यो नमः, अश्विनी-कुमारेभ्यो नमः, अन्य समस्त देवताभ्यो नमः।

इस प्रकार सबको धूप देकर पूर्व स्थानपर धूपका पात्र रख दे। अन्तमें प्रार्थना करेः—

अर्चितोऽहि यथा शक्त्या मया भक्त्या विभावसो।
'एहि कामुमिकीं नाथ कार्य सिद्धिं कुरुष्व मे॥

जो इस विधिसे सदा तीनों काल पूजा करता है वह अश्वमेध यज्ञ करनेका फल पाता है। इस विधिसे धूप देनेवाला पुत्रवान और नीरोग रहकर अन्तमें सूर्य लोक पाता है। जो सब विधिसे नियमपूर्वक पूजा करता है उसकी सब कामनाऐं सिद्ध होती हैं। जो अच्छे पुष्प न मिलें तो हरे कोमल पत्तेही आर्पित करे, धूपही

देले, भक्तिसे जलमात्रही अर्पित करे। कुछ भी न हो तो भक्तिसे दण्डवत ही करले। प्रणाम करनेमें भी कभी असमर्थ रहे तो मानसी पूजा करले। द्रव्यादिके अभावमें ही ऐसा करना चाहिये। द्रव्य और सामग्री उपलब्ध रहते हुए यथोक्त विधिसे ही पूजा करनी उचित है। पुष्प धूपादिके निवेदनके समय पढनेके लिये जो मंत्र ऊपर लिखे गये हैं उनके पढने या स्मरण करने मात्रसे ही सूर्य-नारायण प्रसन्न होते हैं।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे धूपादि निवेदन विधि
वर्णन नामक षट्त्रिंशोऽध्याय : ॥ ३६ ॥

ॐ सिद्धगणेशायनम

(३७) धूपदानके लिये अग्नि जगानेकी विधि

ऋषिश्रेष्ठ वृसिष्ठजी, इतनी कथा सुनाकर महाराज वृहद्नलसे बोले कि हे नरेन्द्र, हम अब उस अग्निकी विधि बतायेंगे जो सूर्य को धूपादि निवेदित करनेके लिये जगायी जाती है। शास्त्रकारोंने शुचि अग्निको साक्षात् सूर्यकाही रूप कहा है। वायु उसका पुत्र है। अग्नि और सूर्यके बीचमें स्थित रहनेसेही वह वायु कहलाता है। अतः उसके तेज करके उठी हुई धूपको सूर्यको निवेदित करना चाहिये। अग्निको विधानसे जगाकर पवित्र स्थानमें स्थापित करना उचित है। शमीकी अथवा पीपलकी अरण्यमें मथंकर अग्निको जगाना चाहिये। पुन पंखेकी हवासे उसको बढ़ाना उचित है। दर्भसे मूर्ति बनाकर उसपर इस अग्निको स्थापित करना चाहिये। फिर कुशासे कुरेदकर अग्निमें आज्यासे घृत डाले। अग्निमें मुखसे फूंक देना वर्जित है। पैरसे अग्निको न छेड़ना चाहिये। अग्निको लांघना भी न चाहिये। होमके समय देवदारु, पलाश, आक, अपामार्ग, शमी, अश्वत्थ, गूलर, बिल्व, चन्दन, सरल, शाल, खदिर आदि वृक्षोंकी प्रदेश या पृथुमात्र समिधाएं लेकर घृतमें तर करके होमनी चाहियें। अन्य वृक्षोंकी समिधाएं अच्छी नहीं हैं। अथवा खाली घीसे, खीरसे, गव्यसे, अन्नसे, औषधियोंसे, तिल-जवादिसे या घृतसे सिक्त किये गये उपलोंसेही होम कर ले

पौर्णिमा और अमावस्याके दिन होम प्रायः होता है। विना धूमकी अग्निमें हवन करना चाहिये। बहुत होमसे धनधान्यकी प्राप्ति होती है और थोड़ेसे हानि होती है। अप्रबुद्ध और धूएंवाली आगमें होम करनेसे यजमान या तो अन्धा होता है या अपुत्र होता है। अकल्याणी युवती, अल्पपठित, बालक, रोगी और असंस्कृतको होम करनेपर न बिठाना चाहिये। इस प्रकारके व्यक्ति होम करने बैठते हैं तो उनके धनका नाश होता है और वे नरकमें पड़ते हैं। अतः होताको विज्ञानकुशल और वेदपारंगतही रहना चाहिये। इस अग्निहोत्र कर्मके प्रधानपुरुषको अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिलता है।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे अग्निविधान वर्णन
नामक सप्तत्रिंशोऽध्याय ॥३७॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(३८) देवार्चनका फल

अग्निविधानकी रीति सम्बन्धी सारी बातें सुनाते हुए ऋषिराज वसिष्ठजी बोले कि हे राजा, अब मैं उस महान प्रश्नका उत्तर तुझे सुनाता हूं जो सांबने देवर्षि नारदसे किया था। सांबने पूछा था कि हे देवर्षि नारदजी महाराज, आपने परम कृपापूर्वक दारुपरीक्षा, प्रतिमा लक्षण, देवयात्राविधान और अग्निकार्यविधि मुझे सुनादी है। हे विप्रेन्द्र, अब कृपापूर्वक देवपूजाफल, दान धर्म फल, प्रदक्षिणा–नमस्कार फल, धूप-दीप-दानादि फल, उपवास और नक्त भोजनफल आदिभी सुनाइये। यहभी बताइये कि अर्धदानकी विधि शास्त्रोंमें क्या बतायी गयी है ? वासकी विधि क्या है ? यहभी बताइये कि भक्ति किसतरह की जाती है और सूर्यनारायण किस तरह प्रसन्न होते हैं।

श्रीकृष्णनन्दन सांबका प्रश्न सुनकर देवर्षि नारदने कहा कि—

मनकी भावना भक्ति है-इच्छा, श्रद्धा, ध्यान और समाधि, ये भक्तिके विकल्प हैं। अपने इष्टदेवकी कथा वार्त्तामें जो रम जाता है उसीको भक्त कहते हैं। जो सदा तन्मय होकर इष्टदेवका पूजन करता है, जो अपने सब कर्म इष्टदेवके निमित्तही करता है वही सनातन भक्त है। देवताके लिये किये जाते कीर्तनादिके समय जिसकी आंखें प्रेमाश्रुपूर्ण हो जाती हैं और शरीरपर जिसके

रोमांच हो आता ह वह मनुष्य भक्तोंमें ऊंचा भक्त है। जो मनुष्य अपने इष्टदेवके सिवा किसीका ध्यान नहीं करता और किसी अन्यकी वन्दना नहीं करता है वही मनुष्य भक्तोंमें श्रेष्ठ भक्त है। इस रूपमें, चलते फिरते उठते बैठते सोते-जागते खाते -पीते सूंघते-ऊंघते जो नर भगवान भास्करकी भक्ति करता है वह भक्तोंमें श्रेष्ठ गिना जाता है। भक्तिसे, समाधिसे और शुद्ध मनसे जो नियमादि किये जाते हैं और दानादि दिये जाते हैं, चाहे वे यत्किंचित् ही क्यों न हों, उनको देवता और पितर प्रसन्नतासे स्वीकार करते हैं। नास्तिकोंकी दी हुई वस्तु उन्हें स्वीकार नहीं होती। नियम और आचार आदिसे भावशुद्धि होती है, और भावशुद्धि सहित जो भी कर्म किया जाता है वह सब सफल होता है। स्तुति, जप और उपहारादिसे भगवान भास्करकी पूजा की जाती है। षष्ठीको उपवास किया जाता है—जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो व्यक्ति भूमिपर शिर धरकर नमस्कार करता है, वह निस्सन्देह सब पापोंसे तुरन्त मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति भक्तिके साथ सूर्यनारायणकी प्रदक्षिणा करता है उसको सप्तद्वीप मयी वसुन्धराकी प्रदक्षिणा करनेका फल मिलता है; उसको सब देवताओंकी प्रदक्षिणा करनेका भी फल मिल जाता है। छठके दिन एक समय भोजन करके जो व्यक्ति सूर्यनारायणकी आराधना करता है और सप्तमीको नियमव्रतादि पूर्वक जो सूर्यनारायण का पूजन करता है उस महाभागको अश्वमेध यज्ञ करनेका फल मिल जाता है। और जो व्यक्ति रातदिन, २४ घण्टेतक उपवास

पूर्वक भास्करका पूजन करता है वह सूर्यलोकमें स्थान पाता है। शुक्लपक्षकी सप्तमीको जो मनुष्य उपवास रहता है और लाल रंगके उपचारोंसे सूर्यनारायणका पूजन करता है वह सर्व-पाप-विनिर्मुक्त होकर सूर्यलोकमें स्थान पाता है।

प्रति सप्तमीको आकका पुष्प लेकर जलके साथ अभिमंत्रित करके जो व्यक्ति दो वर्षतक पीते हैं उनकी सब कामनाएं सिद्ध हो जाती हैं। इसीका नाम अर्क सप्तमी है। इसका क्रम यह है दोनों पक्षोंकी सप्तमियोंको गिनते हुए २४ सप्तमियोंको, पहले वर्षमें, १।१ पुष्प बढाते बढाते, अन्तिम सप्तमीको २४ अर्कपुष्पोंका पान करे। इनके सिवा अन्य भोज्यवस्तु ग्रहण न करे। फिर दूसरे वर्ष उसी हिसाबसे एक एक करके अर्कपुष्पोंकी संख्यामें न्युनता करता चला जाय। अन्तिम सप्तमीको, द्वितीय वर्ष, केवल एक पुष्प ग्रहण करे।

माघमासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तो सदा आदित्यकाही दिवस है और इसी लिये जयन्ती कहलाती है, वह महान फल देनेवाली है। इस दिनके स्नान, दान, जप, होम, उपवास आदि सब पापोंका नाश करनेवाले होते हैं। जो इस दिन श्राद्ध करते हैं या महाश्वेतामंत्रका जप करते हैं वे मन-वांछित फल पाते हैं।

जिन लोगोंकी सर्व-धर्म-क्रियाएं आदित्यके लियेही होती हैं उनके कुलमें तो कोई भी रोगी और दरिद्री नहीं होता है। श्वेत, लाल या पीत मृतिकासे उपलेपन करके स्नान करनेवालेको भी मन चाहा फल मिलता है।

जो भगवान चित्रभानुको विविध रंगके पुष्पों और विविध सुगंधियोंसे, उपवासपूर्वक, पूजते हैं वे भी अपने मनोवांछित फल पाते हैं। पूजाके समय जो लोग घी या तेलका दीपक जलाते हैं वे दीर्घायु होते हैं और उनकी आंखोंकी ज्योति कभी हीन नहीं होती।

नित्य दीपदान करनेवालोंका अन्तरात्मा ज्ञानदीपकसे दीप्तिमान हो जाता है; वह कभी मोहको प्राप्त नहीं होता है। तिल परम पवित्र माने गये हैं— तिलोंका दानभी अति उत्तम है। अग्नि कार्यमें या दीपदानमें तिलों और तिलोंके तेलके प्रयोगसे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं। जो जन देवस्थानमें, रास्तेमें या चौराहेपर नित्य दीपदान करते हैं वे सुन्दर और सुरूपवान होते हैं। दीपदान करनेवाले सदा ऊर्द्धगतिको प्राप्त होते हैं; अधोगति इनको नहीं मिलती है। प्रज्वलित दीपकको न तो बुझाना चाहिये और न उसका हरण करना चाहिये। दीपक चुरानेवाले अन्धे होते हैं और नरकमें जाते हैं। दीपदान करनेवाले स्वर्गलोकमें दीपमालाके समान विराजते हैं।

जो चन्दन, अगुरु और कुंकुम इत्यादिसे सूर्यका अर्चन करते हैं वे सदा धन, यश और श्री पाते हैं। जो मनुष्य रक्तचन्दनमें मिश्रित करके नित्य रक्तपुष्पोंका अर्घ सूर्यको देते हैं वे एकवर्षके भीतरही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

सूर्यके उदयसे आरम्भ करके सूर्यास्ततक, एक दिन भर सूर्याभिमुख बैठकर व्रतपूर्वक जो जन किसी मंत्र या स्तोत्रका जप करते हैं उनके सब पातक नष्ट हो जाते हैं।

जो वत्सवाली गौको सूर्योदय कालमें अर्घपूर्वक दान करते हैं वे भी सब पापोंसे रहित हो जाते हैं। स्वर्ण, धन और वसुधाका अर्घसहित दान करनेसे जन्म-जन्मान्तरतक सुख देनेवाला फल मिलता है। अर्घ सदा प्रयत्नपूर्वक अग्निमें, जलमें, अन्तरिक्षमें, पवित्रभूमिमें, पिण्डमें, और प्रतिमामें ही देना चाहिये। अर्घ दाएं या बाएं न देकर सदा अभिमुख ही देना उचित है।

घृत सहित गुग्गुलकी धूप सूर्यके निमित्त देनेसे, तत्क्षण सर्व-पाप नष्ट होते हैं। श्रीवासक–तुरुष्क–देवदारु–कर्पूर–अगुरु, इन सबकी बनी धूप देनेवाले स्वर्ग जाते हैं।

सूर्य जब दक्षिणायनमें प्रवेश करें या उत्तरायणमें जायँ तब विशेष रूपसे पूजा करनेवाले भी सब पापोंसे छूट जाते हैं।

इस प्रकार नियत समयोंपर और अनियत समयोंपर भी सूर्यनारायणका पूजन करनेसे और गुड़, घी, दुग्ध और आटेके बने हुए गुलगुलों या अपूपोंकी सूर्यनारायणको बलि देनेसे सब कामनाएं सिद्ध होती हैं। घृतका तर्पण करनेसे भी सब काम सिद्ध होते हैं। क्षीरसे तर्पण करनेवालेके मनस्ताप नष्ट हो जाते हैं। दधिसे तर्पण करनेवालेके कार्य सिद्ध होते हैं। मधुसे तर्पण करनेसे १ वर्षके भीतरही सिद्धिया प्राप्त हो जाती है।

सूर्यनारायणको स्नान करानेके लिये जो कोई तीर्थसे या अन्यत्र से जल लाते हैं वे परम गतिको प्राप्त होते है।

छत्र, ध्वजा, वितान, पताका, चामर आदि सूर्यनारायणको चढाने वाले इष्ट गतिको पाते हैं।

मनुष्य जो द्रव्यादि सूर्यनारायणको अर्पित करते हैं उससे एक लाख गुणित वही वस्तु लोकहितके लिये सूर्यनारायण उत्पादित करते रहते हैं।

मनसे, वचनसे या कायासे जितने भी पाप किये होते हैं वे सूर्यनारायणको प्रणाम करते करते तत्क्षण नष्ट हो जाते है।

सूर्यनारायणकी एक दिनकी पूजासे भी जो फल मिलता है वह दूसरे देवताओंकी १०० वर्षकी पूजासे भी नहीं मिल सकता है।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे विविध विधि पूजाफल वर्णन नामक अष्टत्रिंशोऽध्याय ॥३८॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(३९) दीक्षा और पूजा प्रकरण

महाराज वृहद्बलने, ऋषिराज वसिष्ठजीसे, इतनी कथा सुनकर, फिर कहा कि महाराज आपने तो परम कृपा करके मुझे यह पवित्र पुराण कथा सुनायी है तो भी मेरे अबतक सब संशयोंका नाश नहीं हुआ है। महाराज, यह बताइये कि सांबने किससे, किसतरह दीक्षा ली थी।

वसिष्ठ ऋषि बोले कि राजा वृहद्बल, तुमने जो प्रश्न किया है उसका उत्तर श्रद्धायुक्त होकर सुनो। यह पुराण पूर्वमें भास्करनेही दिया है। उसीके अनुसार मैं दीक्षामण्डल प्रसङ्ग तुझे सुनाता हूं। स्वयं सूर्यभगवानने सांबको इस महामण्डलका मंत्रविभूषित तत्व बताया था।

अपने निश्चित स्थानमें जिस ओर पूजाका मण्डप बनाया जाता है उस ओर पूजाका फल भी दिशा के अनुरूप होता है। पूर्वमें मण्डल पूजासे विजय प्राप्ति होती है और निश्चल अर्थ प्राप्ति होती है। दक्षिणमें शत्रुनाश तथा मित्रमिलन होता है। पश्चिममें निजपक्षकी उन्नति और व्याधिका नाश होता है। उत्तरमें सुख सन्तान और शान्तिकी प्राप्ति होती है।

आग्नेय कोण शोषक, नैऋत्य पापनाशक, वायव्य अव्यवस्थित और ईशान कोण ज्ञान लाभ दायक है।

अतः उचित स्थानपर, खुले स्थानमें थोड़ा बचाकर मण्डल स्थापन करे। थोड़ा खोदकर फिर २५ अंगुल विस्तारमें भूमिको समान करले। इसको चारोंओरसे हरे बांस गाडकर और उदुंबर आदिकी वन्दनवार आदि लगाकर सजाले। समतल की हुई भूमिको सुधा, पंचगव्य, रक्तचन्दन आदिमे लीपकर ऐसी बनाले कि वह भूमि फूटी फूटी न रह जाय। क्योंकि इस प्रकार की भूमि दरिद्रता देनेवाली होती है। छिद्रों और दरारोंसे युक्त भूमि सब प्रकारकी आपदाएं पैदा करनेवाली होती है। इसके उत्तर पार्श्वमें गुरु गृह बनाले जहां शिष्य आत्मनिवेदन करें। गुरु विशुद्धकुल सम्भूत, वेदवेदांग-पारगामी, आत्मविद्यानिष्णात और शान्तदान्त विप्र हो। वह अव्रवजित धर्मी हो, वेदत्रयका पथ जानता हो, मानवधर्मका ज्ञाता हो, त्रिकाल धर्म कार्य सम्पन्न करनेवाला हो। शिष्यको भी गुरुके गुणोंके समान गुणी होना चाहिये। वह भक्ति भाव भरा हो, और धर्म फल प्राप्तिका आकांक्षी हो। हीन जाति वाले, नास्तिक, अशुच तथा देव द्विज-गुरुनिन्दक शिष्य न होना चाहिये। गुरु उसीको स्वीकार करे जो सगुण या निर्गुण भक्ति-वाला हो।

जिस स्थानपर महामण्डलका वेत्ता आचार्य विराजता है वहां अवश्यही जगत्पति लोकनाथ भी आ-विराजते हैं। ऐसे स्थानके जनपद पुण्यशील, प्रजा निरुपद्रव और राजा कृतकृत्य हो जाते हैं। फिर परमज्ञानी, दीक्षाविधिका ज्ञाता, सर्व-वेदशास्त्र पवित्रात्मा और विकल्प-अविकल्प योगके सर्व-साधनोंको जाननेवाला ब्राह्मण,

कन्याका काता हुआ, सूत या अर्ककी कुकड़ीका धागा लेकर तिहेरा करके बट ले। फिर "देवस्य" और "निरादित्य" मंत्रसे नटे हुए सूत्रका प्रोक्षण कर ले। सोने, चांदी अथवा ताम्रपात्र लेकर पहले दिग्पालोंको, पूर्व कथित क्रमसे, अर्घ दे ले। फिर मध्यमें तेजोराशि स्वरूप सूर्यनारायणके लिये अर्घपात्र रखे और अर्घ दे। इसी क्रमसे दिग्पालोंको धूप और वलि देकर सूर्यनारायणको धूप और वलि निवेदित करे। वलिमें दूध-घी-शहत मिले हुए तिलोंकी आहुतियां देनी उचित है। ॐ इन्द्राय परमात्मने स्वाहा। ॐ अग्नये शुचिष्मते ठः ठः। ॐ यमाय धर्मात्मने ठः ठः। ॐ नैर्ऋतये कालात्मने ठः ठः। ॐ वरुणाय सलिलात्मने ठः ठः। ॐ वायवे स्पर्शात्मने ठः ठः। सोमायामृतात्मने ठः ठः। ॐ ईशानाय ज्ञानात्मने ठः ठः। ये दिग्पालोंको धूपादि निवेदन करनेके मंत्र हैं। सूर्यनारायणको इस मंत्रसे धूप ओर वलि निवेदित करे—

"ॐ पराय निग्रहे तेजोरूपाय धीमहि तन्नोतेजः प्रचोदयात्।"

महामण्डल-सम्भव यह महापवित्र मंत्र हैं। जो इसका जप करते हैं वे परमकल्याणको प्राप्त होते हैं। यह शरीर मण्डलका महामंत्र है इसीलिये मण्डलका पूर्व समयसे इतना महत्व माना गया है। आठ अंगुलकी आठ कर्णिकाओंका कमलवत मण्डल बनाया जाय। कर्णिकाके अनुपातसे केसर हों। कमलके अनुपातसे द्वार और द्वारके तुल्य प्रकोष्ठकी रचना की जाय। फिर प्रकोष्ठके अनुरूपकी रचना की

अतः उचित स्थानपर, खुले स्थानसे थोड़ा बचाकर मण्डल स्थापन करे। थोड़ा खोदकर फिर २५ अंगुल विस्तारमें भूमिको समान करले। इसको चारोंओरसे हरे बांस गाडकर और उदुंबर आदिकी वन्दनवार आदि लगाकर सजाले। समतल की हुई भूमिको सुधा, पंचगव्य, रक्तचन्दन आदिसे लीपकर ऐसी बनाले कि वह भूमि फूटी फूटी न रह जाय। क्योंकि इस प्रकार की भूमि दरिद्रता देनेवाली होती है। छिद्रों और दरारोंसे युक्त भूमि सब प्रकारकी आपदाएं पैदा करनेवाली होती है। इसके उत्तर पार्श्वमें गुरु गृह बनाले जहां शिष्य आत्मानिवेदन करें। गुरु विशुद्धकुल सम्भूत, वेदवेदांग-पारगामी, आत्मविद्यानिष्णात और शान्तदान्त विप्र हो। वह अग्रव्रजित धर्मी हो, वेदत्रयका पथ जानता हो, मानवधर्मका-ज्ञाता हो, त्रिकाल धर्म कार्य सम्पन्न करनेवाला हो। शिष्यको भी गुरुके गुणोंके समान गुणी होना चाहिये। वह भक्ति भाव भरा हो, और धर्म फल प्राप्तिका आकांक्षी हो। हीन जाति वाले, नास्तिक, अशुच तथा देव-द्विज-गुरुनिन्दक शिष्य न होना चाहिये। गुरु उसीको स्वीकार करे जो सगुण या निर्गुण भक्ति-वाला हो।

जिस स्थानपर महामण्डलका वेत्ता आचार्य विराजता है वहां अवश्यही जगत्पति लोकनाथ भी आ-विराजते हैं। ऐसे स्थानके जनपद पुण्यशील, प्रजा निरुपद्रव और राजा कृतकृत्य हो जाते हैं। फिर परमज्ञानी, दीक्षाविधिका ज्ञाता, सर्व-वेदशास्त्र-पवित्रात्मा और विकल्प-अविकल्प योगके सर्व-साधनोंको जाननेवाला ब्राह्मण,

न्याका काता हुआ, सूत या अर्ककी कुकडीका धागा लेकर
हिरा करके बट ले। फिर "देवस्य" और "त्रिरादित्य" मंत्रसे
टे हुए सूत्रका प्रोक्षण कर ले। सोने, चांदी अथवा ताम्रपात्र
कर पहले दिग्पालोंको, पूर्व-कथित क्रमसे, अर्घ दे ले। फिर
ध्यमें तेजोराशि स्वरूप सूर्यनारायणके लिये अर्घपात्र रखे
गैर अर्घ दे। इसी क्रमसे दिग्पालोंको धूप और बलि देकर
पूर्यनारायणको धूप और बलि निवेदित करे। बलिमें दूध-घी-शहत
मेले हुए तिलोंकी आहुतियां देनी उचित हैं। ॐ इन्द्राय पर-
मात्मने स्वाहा। ॐ अग्नये शुचिष्मते ठः ठः। ॐ यमाय धर्मा-
त्मने ठः ठः। ॐ नैर्ऋतये कालात्मने ठः ठः। ॐ वरुणाय
सलिलात्मने ठः ठः। ॐ वायवे स्पर्शात्मने ठः ठः। सोमाया-
तात्मने ठः ठः। ॐ ईशानाय ज्ञानात्मने ठः ठः। ये दिग्पालोंको
धूपादि निवेदन करनेके मंत्र हैं। सूर्यनारायणको इस मंत्रसे धूप और
बलि निवेदित करे—

"ॐ पराय विद्महे तेजोरूपाय धीमहि तन्नोतेजः प्रचोदयात्।"

महामण्डल-सम्भव यह महापवित्र मंत्र हैं। जो इसका जप
करते हैं वे परमकल्याणको प्राप्त होते हैं। यह शरीर मण्डलका
महामंत्र है इसीलिये मण्डलका पूर्व समयसे इतना महत्त्व माना गया
है। आठ अंगुलकी आठ कर्णिकाओंका कमलवत मण्डल बनाया जाय।
कर्णिकाके अनुपातसे केसर हों। कमलके अनुपातसे द्वार और द्वारके
तुल्य प्रकोष्ठकी रचना की जाय। फिर प्रकोष्ठके अनुरूपकी रचना की

जाय। श्वेत, लाल, पीत, हरित, कृष्ण आदि रंग भरते हुए गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रित करते-करते यह मण्डल रचना उचित है। मण्डलकी आकृति बाहरसे आठ हाथकी होनी चाहिये, उसके बीचके आधे भागमें वापीके समान पुर बनाया जाय। इस पुरके बीचमें बारह दलका कमल बनाया जाय। इन बारह दलोंमें बारह आदित्य मूर्तियोंके नाम लिखे जायं। चार अंगुलका विस्तार देकर पुनः वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वजा, गदा, त्रिशूल लिखें। नर, विश्वात्मक, शंभु, नमस्कार, वषट्कार, संबुद्ध, विश्वकर्ता, निष्कल, ज्ञानसम्भव, मान, उन्मान और महान यह बारह सत्य हैं जो सारे जगतके आधार भूत हैं, इसी मण्डलमें इनका अभिषिंचन, क्रमसे इन १२ मंत्रोंसे, करे—१ इदं विष्णु विचक्रमे २ धामच्छंदो, ३ मनोज्योति० ४ चत्वारिश्रृंगारस्ते० ५ प्राणाय० ६ अग्निमीडे पुरोहितं० ७ इषेत्वोर्ज्जे० ८ अग्नेयआवहि० ९ शन्नोदेवी० १०, कृत्तिवास ११ त्र्यंबयज्ञान मिति० १२ यद्देवा०।

बीचमें महाकाली, कल्पिका, प्रबोधिनी, नीलाम्बरा, घना, अन्तस्था, अमृता आदिकी मूर्तियोंकी परिकल्पना करे। शुक्ल, जयन्त, विजय, अनेकवर्ण, हुताशन, हुतार्चि और व्यापक ये सूर्यनारायणके सात घोड़े हैं इनको इस क्रमसे बलि देना उचित है:—

ॐ हारिण्यैस्वाहा इटा, ॐ विहारण्यैस्वाहा सुषुम्ना, ॐ आनंदायैस्वाहा विदुः, ॐ भाविन्यैस्वाहा संज्ञा, ॐ मोहिन्यैस्वाहा प्रमर्दिनी, ॐ ज्वलिन्यैस्वाहा प्रकर्षिणी, ॐ तापिन्यै

स्वाहा महाकाली, ॐ कल्यायै स्वाहा कल्पिका, ॐ कुद्धायैस्वाहा प्रबोधिनी, ॐ मृत्यवे स्वाहा नीलाम्बरा, ॐ हरार्त्यैस्वाहा घना।

फिर—ॐ द्रुमायस्वाहा शुक्ला , ॐ शुद्धायस्वाहा जयन्त , ॐ महाघोरणायस्वाहा विजयः, ॐ चित्रायस्वाहा अनेकवर्णः, ॐ रुद्राय स्वाहा हुताशनः, ॐसंवलितायस्वाहा हुतार्चि , ॐमहाशिखायस्वाहा व्यापकः, ॐ ज्वलितचण्डलोचनाय स्वाहा अरुणोरथस्थाने ।

इस प्रकार शास्त्रविधिसे मंत्रसहित मण्डल बना लेनेपर पूर्वप्रतिष्ठित अग्निका संस्कार करे। समूहनं (एकत्रीकरण) गायत्रीमंत्रसे-उपलेपन, शन्नोभवंतु वनस्पति-इस मंत्रसे उल्लेखन, और अभ्युक्षण • विन्दुना० इस मंत्रसे करना चाहिये। अग्नेयो इसमंत्रसे अग्निस्थापन करना चाहिये, मंत्र प्रणवसहित होने चाहियें। यथावत अग्निक्रिया कर चुकनेपर बारह बार खीरकी आहुतियां गायत्री मंत्रसे देनी चाहियें। फिर सूत्रके लिये आहुति दे। होम कर चुकनेपर गुरुदेवका पूजन करे। इस विधिसे गुरु और शिष्य मण्डपमें प्रातःकाल पुण्याह वाचन करें। पूर्वोक्त विधिसे मण्डल रचे और वितान, ध्वजा, मालादिसे उस मण्डपको सजा लें। तदनन्तर गुरुमंत्र परायण शिष्य महाबलि उपहार आदिपूर्वक पूजा करे। वेदीके उत्तरकी ओर कुशासन संयुक्त चार अंगुलकी वेदी बनायी जाय। पश्चिम द्वारकी ओर शिष्य अपना स्थान ग्रहण करे। १ द्रुपदा०, २ इदमापो० ३ कर्तृभि० इन मंत्रोंसे तीनबार सूर्याभिषेक करके प्रदक्षिणा की जाय। इसतरह मंडलमें प्रविष्ट होकर

शिष्य अङ्गन्यास करे—मंत्र पढ़-पढ़कर शरीरके अंगोंको छूता जाय और कल्पना करता जाय कि सूर्यनारायण कृपापूर्वक मेरे इन अङ्गोंको पवित्र करते चल रहे हैं।

ॐ अं—शिरः, ॐ आं—हृदयम्, ॐ इं—नाभ्याम्, ॐ ई—ॐ चक्षुषि ॐ उं—ॐ नासिकायाम्, ॐ फट ॐ—कर्णयो, ॐ हुं ॐ—आस्ये, ॐ क्षं ॐ—जिह्वायाम्, ॐ क्षं ॐ—शिखायाम्, ॐ क्षं ॐ—सर्वगात्रेषु।

अङ्गन्यास करके अष्टदलकमल का पूजन करे।

पद्मकी बीचमें ॐ भूतात्मने गोपतये स्वाहा।

पूर्वमें— ॐ खद्योतायस्वाहा;
दक्षिणमें— ,, ससत्यायस्वाहा;
पश्चिममें— ,, अमृतायस्वाहा;
उत्तरमें— ,, वक्षस्तमायस्वाहा;
आग्नेयमें— ,, अव्यक्तायस्वाहा;
नैर्ऋतुमें— ,, क्षयायस्वाहा;
वायव्यमें— ,, अक्षयायस्वाहा;
ईशानमें— ,, संवातिनेस्वाहा:।

इसके बाद दीक्षायोगपूर्ण मंत्रन्यास करे:—

यज्ञोपवीतमें—ॐ पावकायशुचयेस्वाहा;
दण्डमें— ,, धर्मराजायस्वाहा;
मेखलामें— ,, दुरुक्तदुरितपरिधानिस्वाहा।

यज्ञोपवीत कन्याके हाथमें काते गये सूतका, दण्ड पलास गूलर या खैरकी लकड़ीका, मेखला दर्भ-मुंज-बिल्व निर्मित होने चाहिये।

इसके अनन्तर ये सात आहुतियां दे—

१ ॐ सरस्वात्यैस्वाहा;
२ ,, ,प्रतिष्ठावत्यैस्वाहा;
३ ,, वेदवत्यैस्वाहा;
४ ,, चर्यावत्यै स्वाहा;
५ ,, सत्यवत्यै स्वाहा;
६ ,, भुरावत्यै स्वाहा;
७ ,, स्वभावत्यै स्वाहा;

इतना करके गुरुशिष्य अग्निकुण्डसे भस्मलेकर मस्तक, कण्ठ, दोनों भुजा और हृदयदेशमें मंत्र पढ़ते हुए भस्म लगाएं। फिर

ॐ चित्राय स्वाहा पूर्वमध्ये;
,, एमनिष्णनिस्वाहा पूर्वतः;
,, हिंसाय ठः ठः दक्षिणतः;
,, निदिवाय ठः ठः पश्चिमतः;
,, लिएने ठः ठः उत्तरतः;
,, सभूतिने स्वाहा (शरीर पर)
,, सोमवत्यै स्वाहा;
,, सुभगे ठः ठः ;
,, प्रेतवति ठः ठ ;
,, वाजिनवति ठः ठः ;

इन मंत्रोंसे दिशाओंके नामपर आहुतियां दें। सबके अन्तमें गुरुकी वन्दना करके सब सामग्री उनको भेट करें और प्रार्थना पूर्वक कार्यकी समाप्ति करें।

इति श्री हिन्दी साम्बपुराणे दीक्षा-पूजा-प्रकरण नामक एकोनचत्वारिंशोऽध्याय ॥३९॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(४०) भास्कर मंत्रास्त्र

अब हम शुभ यज्ञस्थान विधि कहते हैं। तू यज्ञोंमें अधियज्ञ है, तू यज्ञाङ्ग है, तू यज्ञसम्भव है, तू यज्ञमूर्ति है, तुझे नमस्कार करके, यज्ञसे हम तेरा यजन करते हैं। सर्वकारणसंभव ज्वालामालाकुलका वर्णन करते हैं। देवाधिदेवकी मूर्तिमें वर्णोंके स्थान बताते हैं। सूर्यके हृदयमें 'अ आ' के रूपमें सकल और निष्कल सिद्धियां हैं। ये 'कर्म' और 'निर्वाण' मय कहे गये हैं।

'इ-ई' विघेश और योगीशकी नाभिमें हैं। 'उ-ऊ' आदि बीज हैं जो सूर्यनारायणके विग्रहके उरुस्थानमें निवास करते हैं। 'ऋ-ॠ' ऋतं और सत्यं हैं, इनका स्थान सूर्यनारायणके पैर हैं। 'ऌ-ॡ' धर्मादिवर्गके देनेवाले अर्णव हैं। 'ए-ऐ' माताएं हैं। 'अं-अः' महद् व्योमकी दो मूर्तियां हैं। 'क-ख' रथमें, 'ग-घ' मण्डलमें हैं और 'ङ' सारथीके स्थानमें है। 'च' पितरोंके स्थानमें है 'छ' देवदानवयुक्त हैं। 'ज' में सब जगत है, 'झ' में बन्धनक्रिया है। 'ञ' बन्धन काटनेवाला है। 'ट' पाश से छुड़ाता है, 'ठ' तिर्यग है। 'ड' अनुग्रह स्थान है, 'ढ' क्रोधस्थान है। 'ण' में वालखिल्यादि ऋषियोंका और भृगु आदि महातपस्वियोंका स्थान है। 'त' में सिद्धगन्धर्वोंका निवास है। 'थ' में पुण्यप्रभाव है। 'द' दम है, 'ध' गोचर

ब्रह्म है। 'न' सर्वतः अनन्तही है, 'प' क्षर सम्भव है। 'फ' अशुभनाशक है। 'ब' शुभदाता है। 'भ' भेदक और 'म' सरितापति है। 'य' ग्रहनक्षत्रका प्रतीक है, 'र' अग्निबीज अथवा प्रदाहक है। 'ल' सर्वविषय बीज है, 'व' भवोद्भवमय है। 'श' दोषोंका शोषक है, 'ष' बीजमंत्र है। 'स' से छन्दोंकी उत्पत्ति है, 'ह' शाश्वत ब्रह्मस्वरूपही है। 'क्ष' परम निर्वाण, अभय और कामनाए देनेवाले प्रभु साक्षात हैं। 'क्ष' अक्षर अव्यय और अक्षय कहा गया है। ये सब सम्यग उपासनासे फल देनेवाले बीजाक्षर हैं।

राजा बृहद्बलने यह वर्णविभूति कथा सुनकर कहा कि महाराज, आपने ये जो सूर्यनारायणके बीजाक्षर बताये है ये सब यथा कर्मके-योग फल देनेवाले हैं। ये बातें इतनी गम्भीर है कि इनको अस्थिर चित्तवृत्तिया समझभी नहीं सकती हैं। आप तो मुझे उस सब अर्थ-प्रदायक महामत्रको बताइये जो दीक्षाके अन्तमें साबको स्वयं सूर्यनारायणने दिया था।

वसिष्ठजी बोले कि हे राजा बृहद्बल, मैं तुझे उस महामन्त्रको देता हूं जो जगतमें सब कुछ कर दिखानेकी शक्ति रखता है। सूर्यनारायणकी कर्णिकाओंसे दिग्पालोंकी उत्पत्ति है। इन दिग्पालोंकी शक्ति सहित अष्टदलकमलयुक्त, यह महामंत्र साबको दिया गयाथा ॐ अं ऊं ह्रूं जू दुं दू ओं ॐ। यह परम गोपनीय महा मत्र है। यह परम ज्ञानमय और परम पदपूर्ण है। यह रविकी शक्तियुक्त होनेसे आयुप्रद है। रुद्रकी शक्तियुक्त होनेसे व्याधिका नाश करनेवाला है। विष्णुकी शक्तियुक्त होनेसे धनधान्य देनेवाला है।

परमेष्टिसे संयुक्त होनेसे सर्व कामनाएं देनेवाला है। रुद्रशक्तिसे अत्यन्तयुक्त होनेसे शत्रुओंको भय देनेवाला है। विष्णुशक्तिके प्रभावसे शीघ्रही वाचाशक्तिप्रदान करनेवाला है। यह नववर्णका शरीर वाला महामन्त्र भास्करका दुर्धर अस्त्र है।

अब षडङ्ग न्यास बताते हैं। इन मंत्रोंको पढ-पढकर इनके साथमें बताये गये स्थानोंको छुवा जाये—

ॐ ड्रुं हूं हृदयायनमः—हृदय, ॐड्रुं क्षूं ॐ ऑ—शिर, ॐऊँ हूं आं क्षूं हूं डं ॐ शिखा, ॐ ओं क्षुं ॐ—बाहु, ॐ हूँ। ॐ क्षूं—नेत्र यह कवच सर्व विघ्नोंका नाश करनेवाला है। यह स्वयं सूर्य नारायणका बताया हुआ है।

पहले जो महामंत्रास्त्र बताया गया है, षडङ्गन्यासके बाद उसका एक एक लाख जप नित्य करे और फिर एक एक लाख बार तिलमें त्रिमधुर मिलाकर होम करे। होमके अन्तमें पुनः होम भाग का विधान करे। इससे साधकको देवदर्शन प्राप्त होकर कृतार्थता मिलती है। साधक त्रिकालज्ञ, तत्त्वज्ञ और त्रिगुणातीत हो जाता है। मंत्र सिद्ध-साधक देवताके समान पूजनीय बन जाता है। सब लोगोंके रोग-शोक नाश करनेकी शक्ति उसमें आ जाती हैं। यह मंत्रशक्ति अप्रमेय है जिसको नारदने, पुनः, सांबको बताया तबसेही यह भास्कर-ध्वजके समान लोगोंमें प्रचलित हुई है। यह मंत्रशक्ति सब पापोंका नाश करनेवाली सब पुण्योंका उदय करानेवाली और सबकामोंको देनेवाली है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे भास्कर मंत्रास्त्र वर्णन
नामक चत्वारिंशोऽध्याय ॥४०॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(४१) दिग्पाल पूजा प्रकरण

ऋषिराज वसिष्ठजी बोले कि हे राजा बृहद्वल, इसके बाद दिग्पालोंकी पूजा पूर्वक्रमानुसार करनी चाहिये ॐ निक्टाय ठः ठः, ॐ वामनाय ठः ठः, ॐ लम्बोदराय ठः ठः, ॐ हेमगर्भाय ठः ठः, ॐ भीमवेगाय ठः ठ, ॐ सौम्यरूपाय ठः ठ, ॐ पंचात्मकाय ठः ठः, ॐ विदेहाय ठः ठ', धर्मनिग्रहाय ठः ठ, ॐ अहिर्बुध्नाय ठ ठ', ॐ कालाय ठ' ठ', ॐ उपकालाय ठः ठ', पूर्वदिशामें इनका पूजन करके खांड आदिकी बलि दे।

फिर दक्षिण दिशामें इन नामोंसे पूजन करे—

ॐ अघोराय ठ ठ, ॐ वटुकाय ठः ठ.,ॐ ऊर्ध्वरोमाय ठ ठ, ॐ मृत्युहस्ताय ठ ठ, ॐ मेघनादाय ठ ठ', ॐ कौस्तुभाय ठ ठ, ॐ धूम्रकालाय ठ ठ, ॐ उग्रजिव्हाय ठ ठः, ॐ मासमूर्तये ठ ठ, ॐ वल्कलिने ठ ठ, ॐ दण्डिने ठः ठ', ॐ कर्मसाक्षिणे ठ. ठ'। दक्षिण दिशामें इनके लिये मत्स्यमांसादि की बलि दी जाती है।

फिर पश्चिम दिशामें इन नामोसे पूजन करके बलि दे—

ॐ सूर्यमूर्त्तये ठः ठः, ॐ गुहाशयाय ठः ठः, ॐ रंकपानाय ठः ठः, ॐ महानलाय ठः ठः, ॐ वायुभक्षाय ठः ठः, ॐ पंचमूर्त्तये ठ ठ, ॐ अग्निपाशाय ठ ठ, ॐ पशुपतये ठ ठ, ॐ महा

ॐ आशाय ठ ठ, ॐ कृष्णदेहाय ठ ठ, ॐ अमोघाय ठ ठ, ॐ अच्युताय ठ ठ। इनको क्षीर-घृतपूर्ण पात्रकी बलि दी जाती है। फिर उत्तरमें इन नामोंसे पूजन करे—

ॐ शिखिलिंगिने ठ ठ, ॐ योगेश्वराय ठ ठ, ॐ त्रिशिखाय ठ ठ, शतक्रतवे ठ ठ, पंचाशिखाय ठ ठः, ॐ सहस्रकिरणाय ठ ठ, ॐ सुवर्णकेतवे ठ ठ, ॐ पद्मकेतवे ठ ठ, ॐ यज्ञरूपाय ठः ठ, ॐ भुवनाधिपतये ठ ठ, ॐ पद्मनाभाय ठ ठ, ॐ इनको सोने, चांदी, या वस्त्रोंकी बलि दे।

हे राजा बृहद्वल, जो कोई आदमी, इस प्रकार, शास्त्रानुसार पूजा करता है, उसके सब कार्य आरम्भ होते ही सिद्ध हो जाते हैं। सूर्यनारायणकी पूजाकी अन्य विधि नहीं है—यह सर्ववेदविदित पुराणोक्त सूर्यपूजा है। जो कोई निर्मोहित जन अन्य प्रकारसे पूजा करते हैं, उनको भक्ति और श्रद्धाका तो फल मिल जाता है—पर पूजाका फल नहीं मिलता। यह पूजाशास्त्र पाप नाश करने वाला और आयु-आरोग्य-विजय-यश-कीर्ति देनेवाला है। इसका अध्ययन करना चाहिये।

इन दिग्पालोंकी पूजा कर चुकनेपर पहले कहे हुए महामंत्रसे पांच पांच आहुतियां समिधाकी या खीरकी देनी उचित हैं—

ॐ शितिने ठ ठ निकटाय नम, ॐ अशितिने ठ ठ वामनाय नम, ॐ व्यवहिताय ठ ठ लम्बोदराय नम, ॐ संहताय ठः ठः हेमगर्भाय नम, ॐ सर्वगाय ठः ठः विदेहाय नमः, ॐ स्थिराय ठः ठः भीमवेगाय नमः, ॐ शांताय ठः ठः

ग़ौम्यरूपाय नमः, ॐ सर्वहराय ठः ठः पंचात्मकाय नमः, ॐ अजरूपाय ठः ठः धर्मविग्रहाय नमः, ॐ निरश्राय ठः ठः अहिर्बुध्न्याय नमः, ॐ मनवे ठः ठः कालाय नमः, ॐ किन्नराय ठः ठः उपकालाय नमः। पूर्व दिशाकी ओर ॐ संस्तुताय ठः ठः अघोराय नमः, ॐ अनन्ताय ठः ठः वडवामुखाय नमः, ॐ क्रुद्धाय ठः ठः ऊर्ध्वरोमाय नमः, ॐ समाय ठः ठः मृत्युहस्ताय नमः, ॐ अनन्तजिह्वाय ठः ठः मेघनादाय नमः, ॐ स्फुरिताय ठः ठः कौस्तुभाय नमः, ॐ क्रूराय ठः ठः धूमकालाय नमः, ॐ समीनगाढाय ठः ठः उग्रजिह्वाय नमः, ॐ करनाय ठः ठः मासमूर्ति० ॐ अग्नये ठः ठः वल्कली० ॐ रक्तवर्णाय ठः ठः दिणी० ॐ सुरक्ताय ठः ठः कर्मसाक्षी० । दक्षिण दिशामें।

ॐ सरस्वत्यै ठः ठः वायुवक्ष० ॐकारवे ठः ठः पंचमूर्तिः० ॐ क्रीडते ठः ठः अग्निपाशः० ॐ विक्रीडते ठः ठः पशुपति० ॐहन्ताय ठः ठः महापाशः० ॐ विहन्ताय ठः ठः कृष्णदेहः० ॐ ध्रुवाय ठः ठः अमोघः० ॐ विशिखाय ठः ठः अच्युतः० पश्चिम दिशामें:० ॐ सवित्रे ठः ठः शिखिलिंगः० ॐ मध्यगताय ठः ठः ग्रन्थिन्यासः० ॐ युक्ताय ठ ठ योगवासः० ॐ खड्गिने ठ ठ निशिख० ॐ ज्येष्ठाय ठ ठ शतक्रतु० ॐ मध्यगताय ठ ठ पंचाशिखा० ॐ सुनिष्ठाय ठ ठ सहस्रकिरण० ॐसर्वैराग्याय ठ ठ पद्मकेतु० कातराय ठ ठ यज्ञरूप० ॐ युगाय ठः ठः भुवनाधिप० ॐअनन्तशक्त्ये ठ. ठः पद्मनाभः० उत्तरदिशामें।

यह मन्त्रकाश पुरातनकालमें वेदोंसे लिया गया था। इससे सब कामनाएं पूरी होती हैं। यही परमज्ञान और यही निष्कल कर्म

योग है। जैसे सूर्यने सांबको दिया था वैसेही मैंने तुझे दे दिया है। दिग्पालोंको बलि देकर और होम करके सूर्यनारायणका आह्वान करे।

एह्येहि देवावृत शब्दमूर्त्ते-सर्वैर्नुतो यागमिमं प्रपद्य।
त्वमेव पूज्योसि सुरासुराणा-मर्मादि वर्गस्य समीहकानाम्॥

अन्तमें पूजा करके इस मंत्रसे विसर्जन करे—

ज्ञानमत्रार्चितो मूय. कुसुमैश्च विधानतः।
गच्छ देव यथाकामं पुनरागमनायच॥

यह परम सत्य, यही परम तप, यह परोदेव है। इस पुराणोक्त पूजाशास्त्रको जो प्रयत्नपूर्वक पढ़ता है वह निस्सन्देह सूर्यलोकमें जाता है। यह तीर्थोंका तीर्थ, मंगलोंका मंगल और पवित्रोंका पवित्र है। इस परमपदप्रदाता शास्त्रको पढ़ना सुनना चाहिये।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे दिग्पालादिपूजन विधान नामक एकचत्वारिंशोऽध्याय. ॥४१॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(४२) मित्रवनमें महोत्सव

वसिष्ठजीने कहा कि हे राजा बृहद्बल, सूर्यनारायणका मन्दिर बनानेके पश्चात् शाकद्वीपसे याजकोंको लाकर धर्मात्मा सांब सूर्यनारायणकी सेवामें आ-उपस्थित हुआ। मित्रवनमें मन्दिर बनने और भगवानकी स्थापनाकी बात सुनकर देव, मनुष्य, पन्नग, ऋषि, सिद्धजन, विद्याधर, गंधर्व, उरग, गुह्यक, दिक्पाल, लोकपाल, ग्रह, यक्ष, आदि सपरिवार उसी ओर चल पड़े। कुछ दारुचापधारी थे, कुछ सर्वार्थगामी थे। कुछ नियत आहार करते थे, कुछ निराहार रहते थे। सबने देहगेहकी चिन्ता छोड़ दी थी, सबने सूर्यनारायणसे लौ लगा ली थी। कई तो महीनोंका लंघन करके वहां पहुंचे थे। दधि, दुग्ध मधु आदि समुद्रोंके उस ओर रहने वालेभी, इसीक्रमसे, यात्राकरके खारे समुद्रके इस ओर आ पहुंचे। उन्होंने मित्रवनकी तपस्थलीको देखा। वह नानाप्रकारके पुष्पोंसे पुष्पान्वित हो रही थी। वह देवगन्धर्वादिसे सेवित हो गयी थी। मानो साक्षात सूर्यलोकका नमूनाही पृथिवीपर विद्यमान है। इस मित्रवन तपोभूमिको देखकर सब लोग अतिशय प्रसन्न हुए। परम रमणीक, सर्वजन कल्याणकारी सर्व कार्यसिद्धिप्रद, सर्वजन सुखकर इस तपोभूमि और इस तपोभूमिके मध्यमें सूर्यमन्दिरको विश्वकर्माने निर्मित किया था। सदा शास्त्रों

का मर्म जाननेवाले नारदजीने भी पाठ करते हुए कहा है यदु कुलनन्दन सांब, तुमभी धन्य हो कि इस विधि-विधानसे सनातन पूजा सूर्यनारायणकी कर रहे हो ! वास्तवमें तुम महाभाग हो, वास्तव में तुम परम भक्त हो। तुम्हारी ही कृपासे हम यहां सूर्यनारायणके और सूर्यनारायणके तपोवनके दर्शन कर रहे हैं।

देवर्षि नारदके ये निर्मल वचन श्रवण करके परम धर्मात्मा सांबने साष्टांग दण्डवत किया और सूर्यनारायणसे विनय की—

हे देव, आपने अपने उत्तम सान्निध्य स्थानका जो ज्ञान प्रदान किया था, उसीके अनुसार आपके अनुग्रहके लिये मैंने तपस्या की है। हे प्रभो, अब आप मुझ पर प्रसन्न तो हैं ?

सूर्यनारायणकी प्रतिमा सांबको भक्तिभावसे गदगद हुआ देख कर बोली- सांब, मेरे मन्दिरमें रहते हुए तू इस अकीर्तिकर चिंता को तज दे। हे यदुकुलनंदन, मैं पहले ही वरदान और वचन दे चुका हूं। पुराकालसे इस तपोवनमें सैकड़ों वर्षोसे अनेक जन और भी तपस्या कर रहे थे। मेरी कृपाकी आकांक्षा रखनेवाले इन तपस्वियोंके लिये मेरा मन पिघल रहा था। मैंने कहा है यह वन सत्य-धर्मका आगार पयवच-बल समन्वित होगा।

साक्षात देव प्रतिमाको ये बातें कहते सुनकर सब लोग परम हर्षित हुए। उन्होंने कहा कि हे भगवान् आप हमपर प्रसन्न हुए हैं तो यह वर दीजिये कि इसप्रकी पूजाप्रतिष्ठा सब प्रकारसे निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय। सूर्यनारायणने भी प्रसन्न होकर वर दिया कि " एवमस्तु "—अच्छा जाओ ऐसाही होगा।

सांबके साथ अन्य जनोंनें भी प्रार्थनाएं की थी। मुनिजनोंने कहा कि हे महातेजधारी प्रभो आप प्रसन्न हो कर वरदान दे रहे हैं। ऐसी कृपा कीजिये कि अब आप इस स्थानको मानते रहें। इस पर सूर्यनारायणकी प्रतिमाने सबके देखते-देखते फिर कहा कि इस कल्पमें ऐसाही रहेगा। औरोंने कहा कि कृपानाथ प्रसन्न हो कर यह वर दीजिये कि यह स्थान कीर्तिप्रदान करनेवाला होगा, जो लोग यहां आपका आराधन करेंगे वे मोक्ष पाते रहेंगे।

सूर्यनारायणकी प्रतिमा बोली कि हे ऋषि मुनि और भक्तजनों, यह सप्तद्वीपोंमें देवदुर्लभ स्थान मैंने दिया है। यह स्थान पूरे एक मन्वन्तर तक कीर्ति-प्रदाता बना रहेगा। मंत्र-सिद्ध, मुनिजन, तपस्वी और देवगण यहां तप करके परमपद प्राप्त करेंगे।

देवर्षि नारदने इस विषयमें बताया कि १९००१ वर्षका एक गण्ड होता है और सौ हजार गण्डका एक मन्वन्तर होता है। इसके पहले यम, स्वारोचिष, देव, कीर्तिवान, सत्य, ऋतु और सनत्कुमार मनु रह चुके है। अब आठवें वैवस्वत मनु वर्तमान हैं। इनके बाद शम्भो मनु होंगे। इनके बाद महानस मनु होंगे। महानसके पश्चात वसिष्ठजी मनु बनेंगे। उनके बाद यह कल्प पूरा हो जायगा।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे मित्रवन शोभा वैशिष्ठ्य
वर्णन नामक द्विचत्वारिंशोऽध्याय ॥४२॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(४३) सूर्यप्रतिमा का आविर्भाव

इतनी कथा सुनाकर ऋषिराज वसिष्ठजीने कहा कि हे राजन, खारे समुद्रसे घिरे हुए भूमिभागमें, इस ओर, अनेक जन, देवदर्शन-प्राप्तिके आकांक्षी निवास कर रहे थे। अनेक ध्यानमें तल्लीन, अनेक पूजामें तत्पर तो अनेक सूर्यनारायणकी परम प्रसन्नता प्राप्तिके निमित्त यज्ञोंमें संलग्न थे। अनेक चिन्तन रत थे, अनेक सिद्ध गन्धर्वजन स्तुतिगानमें मग्न थे और अनेक अप्सराएं नृत्यपरायण रहती थीं। किसी भक्तकेपास वीणा थी तो किसीकेपास अर्घ्य पात्र। कई पुष्पाञ्जलि अर्पित करते हुए दिखाई पड़ते थे तो कई नतमस्तक। कुछ योगिजन प्राणायामादिमें तत्पर नजर आते थे तो कुछ मननमें लीन थे। क्षांतियुक्त ऋषिजन भगवान भास्करकी स्तुति करते थे। यातुधान, यक्ष, सिद्ध, महोरग दिक्पाल, लोकपाल, विघ्ननिनायक, ये सबजन मित्रवनमें भक्तिभावभरित मनमे उपस्थित रहते थे। सारांश यह है कि उन दिनों भगवानके दर्शनकी लालसासे सबही क्षीण गात्र-इन्द्रिय प्राण रहकर देवाराधनमें तत्पर थे। जाग जागकर, आचिंपर रह-रहकर और क्लिष्ट तप करते-करते सबलोग दर्शनकी लालसासे मित्रवनमें रहते थे। एक दिन प्रभातकालमें, जबकि सूर्यनारायण उदय होनेही वाले थे, जबकि उदयोन्मुख सूर्यनारायणकी रश्मि-राशिके प्रभावसे चारों दिशाएं निर्मल हो उठी थी और पद्मराग

कीसी अरुणप्रभा छायी हुई थी। सागर आकाश-भूतल सबही अरुणिमासे झिलमिला उठे थे। सबके सामने एक ज्वालामालासी दिखाई दी। उस उदयकालमें, उसदिन, दिवाकर परम उज्ज्वल रूपमें विराजित दिखाई दिये। आकाशमें और सागरमें दो सूर्य-मण्डल सुशोभित होने लगे। भक्तोंने देखा कि भगवानकी अपरा-मूर्ति जलमध्यमें विराजती हुई भी वैसीही शोभायमान है। भगवानका अद्भुत दर्शन प्राप्तकरके सबको बड़ा भारी विस्मय हुआ। लोग दौड़कर तैरते हुए पहुंचे और प्रतिमाको हाथोंहाथ लिवा लाये। सबने प्रहृष्टमनसे उसको उचित स्थानपर विराजित कर दिया। सब जन भगवानकी सागोपाङ्ग वेदशास्त्र सम्मत रूपमें स्तुति करने लगे।

हो प्रलय तुम्हीं, हो काल तुम्हीं, क्षय-क्षात-क्षयानल देव तुम्हा।
उद्भवभी तुम्हीं हो जगन्नाथ, स्थिति सम्पात्ति देव तुम्हीं ॥
तुमसे ही जगकी उत्पत्ति हो, तुमसे मिलते हिम वर्ष-घाम।
तुम सुखशीतलता देते हो, हे जगत्वन्द्य शोभाभिराम ॥
तुम देवोंके, ऋषि-मुनियोंके, तुम प्रकृति पुरुषके हो कर्त्ता।
छाया-संज्ञाका मिस लेकर, तुम निरवलम्ब तुम जग-भर्ता ॥
जड-चेतन सबके आश्रय हो, स्वीकार कीजिये नमस्कार।
हे सबके प्राण, चक्षु सबके, लो नमस्कार है बार-बार ॥
सब थलमें हो सब कालोंमें, हे नारायण हो सर्वगति।
हे सर्वसेव्य हे दुखभजन, हे सर्वसर्व हे सर्वगति ॥

हे ध्यानिजनोंके ध्यान हरे, हे योगिजनोंके परमयोग।
हे शुभफलदाता क्षणभरमें, क्षणभरमें नाशक रोग-सोग॥
सर्वार्ति—विनाशक अविनाशी, हे मोक्षप्रदाता कल्याणकर।
हे दया-अतिशय-क्षमवान, हे तमनाहर, हे प्रभानिकर॥
नवसर्जन-रक्षण-दाहनमें, हिम सर्जनमें महिमा अपार।
हे भक्तजनोंके भयभंजन, हे योगमूर्ति लो नमस्कार॥
हे देवजनोंमें शिरोरत्न, हे प्रभामणि हे सुखदाता।
हे ज्ञान, ज्ञानी, हे ज्ञानगम्य, हे ज्ञानशक्ति हे जगत्राता॥
तुम न्यायनिष्ठ, तुम न्यायी हो, हो न्याय तुम्हीं नय-नियम तुम्हीं।
हे नित्य-अनित्य-नियति स्वामी, शुभ न्यायमूर्ति हो स्वयम् तुम्हीं॥
तुम त्राता हो थलमें सबके, तुम त्राता हो जलमें सबके।
नभमें भी, नभसे ऊपरभी, हो त्राता पलपलमें सबके॥
सब दुर्दान्तोंके दमनहार, हे साधकजनके साध्यदेव।
सब बन्धु—विहीन—जनोंके तो, हो करुणाकर बन्धुस्वमेव॥
कर शान्ति दया कीजे निवास, होकर प्रसन्न हे जगदीश्वर।
जिसमें हित सबका हो निश्चय, दाजै अभीष्ट वर परमेश्वर॥

स्तुति सुनकर सूर्यनारायणकी प्रतिमाने कहा—"अच्छा हमें भी यही अभीष्ट है।" यह वाणी सबने सुनली, और सब मोहित होकर पूछने लगे—

ये मूर्ति किसने निर्मित की है?
किसने प्रतिष्ठित किया है?
हे नारायण, आप किस निमित्त कहांसे पधारे हैं?

सूर्यनारायणकी प्रतिमा बोली, पहले शाकद्वीपमें विश्वकर्माने मेरी मूर्ति बनायी थी। फिर सर्वलोकहितके लिये, वहीं, सर्वप्रथम देवोंने मेरी पूजा की थी। फिर हिमालयके पृष्ठभागके एक कल्पवृक्षकी शाखासे मेरी इस मूर्तिकी रचना विश्वकर्मानेही की थी। वहांसे उसीने स्नानके कारणसे, सर्वप्रथम चन्द्रभागामें, फिर वहांसे विपाशामें, फिर वहांसे शतद्रुमें, फिर वहांसे यमुनामें, फिर वहांसे जान्हवीमें, फिर वहांसे मोदगङ्गामें, फिर महानदीमें,— इसप्रकार मेरे अनुग्रहके लिये, विश्वकर्माने मुझे सब तीर्थोंमें स्नान कराकर महासागरमें स्नान कराकर छोड़ दिया। वहींसे मेरा यहां आना हुआ है, क्योंकि आप सब भक्तोंने मेरी स्थापनाका, मित्रवनमें, आयोजन किया है।

सूर्य नारायणका यह परम–प्रीतिवर्धक वचन सुनकर सबने हाथ जोड़कर साष्टांग प्रणाम किया। फिर सब धर्मोंके जाननेवाले विज्ञान-ज्ञान–विशिष्ट वैवस्वत (सूर्यभक्त) विप्रोंने, भगवानके मन्दिरमें उस मूर्तिकी विधिसे प्रतिष्ठा की। फिर देवाकार्यसे निवृत्ति पाकर, सब उच्च वर्णोंकी प्रजाने सूर्यनारायणसे दीक्षा और मण्डलकी विधि पूछकर, उसके अनुसार सुखसे दीक्षा ली। सौरि क्रिया यथा-विधि सम्पादित करनेवाले दीक्षित, मुण्डित और मुण्डीर भी कहलाते हैं। इन्हींको निगमागमका ज्ञान रखनेवालोंने कृतार्थ भी कहा है।

ऋषिराज वसिष्ठजीने कहा कि हे राजा, अब तो तेरी समझमें यह बात आगयी कि यह मित्रवन सृष्टिके आदिसे सूर्यनारायणका

मुख्य स्थान है, इसकी युगयुगमें कीर्ति गायी गयी है। यह मित्र वन सब पापोंका हरनेवाला है, सब पुण्योंका देनेवाला है और सर्व तीर्थमय तथा शुभ है। जो लोग भक्तिभावसे इस तीर्थमें आयंगे उनके दुःख अविलम्ब मिट जायंगे। जो महा-मोहवश इसके विरुद्ध हैं, उनकी प्रबलप्रयत्नपूर्वक अर्जित सम्पत्तिभी स्थिर नहीं रहेगी। जबतक नारायण ताप देते हैं, जबतक लवण समुद्रमें जल है, जबतक लोकपाल हैं तबतक इस सूर्यस्थानकी कीर्ति अचल रहेगी। जो महापापी जन भी इस क्षेत्रमें आयंगे उनका भी सूर्यनारायण त्राण करते रहेंगे। कीर्ति-धनादिके आकांक्षी साधारण मनुष्योंकी तो बातही क्या है, यह स्थान तो सब देवताओंकाभी प्यारा है। यहां सबके सब दुःखोंका नाश हो जाता है; यह स्थान शान्ति, पुष्टि, सुख और कामनाएं देनेवाला है। पूर्वकालमें इसकी कीर्ति ऋषि मुनियोंनेभी गायी है। इस स्थानपर उदय और अस्तकालमें जो लोग सूर्य-नारायणकी प्रतिमाका दर्शन करते हैं, उन सबको सूर्यनारायण कृतार्थ करते हैं। इस सूर्यनारायणके परमतीर्थमें जो जो क्रियाएं की जाती हैं वे लोक-परलोकके लिये सिद्धि देनेवाली होती हैं। जम्बूद्वीप तो उत्तम कर्मभूमि है। इस द्वीपमें इस स्थानकी कीर्ति स्वयम् देवोंने गायी हैं। मानो साक्षात् सूर्यनारायण अपनी एक मूर्तिको द्विधा बनाकर यहां आ विराजे हैं। जो जन प्रातःकालमें सूर्यनाराथणका दर्शन नित्यप्रति करते हैं उनके लिये भय और रोग-शोक नहीं रहते। मध्यान्हमें दर्शन करनेवालोंको सूर्यनारायण शीघ्रही सदाके लिये सुखी बना देते हैं। सांब द्वारा प्रतिष्ठित सूर्यनारायणका

दर्शन जो जन सायंकाल करते हैं, उनके धर्म-काम-अर्थ सम्बन्धी कार्य शीघ्र ही सिद्ध होजाते हैं।

इस युक्तिसे सर्व धर्मपरायण जन भक्तिभावसे सेवापूजा और सूर्यकीर्तन करते हुए अन्तमें सूर्यमें ही लय हो जाते हैं। प्रजापतिने ही देवराजकी कृपाप्राप्तिके लिये, सृष्टिकालकेपूर्व, इस स्थानकी रचना की थी। यहां धर्मका विघात करनेवाले शीघ्रही इस प्रकारसे नष्ट हो ज़ाते हैं जैसे काष्ठका टुकड़ा प्रज्वलित अग्निमें पड़कर भस्म हो जाता है।

इति श्रीहिन्दी साम्बपुराणे सूर्यप्रतिमा प्राप्ति एवं सूर्य प्रतिष्ठा नामक त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(४४) आचार प्रकरण

वसिष्ठजीने कहा :—

जयति सुरपति नाथ ।
कर निकर-विनिहित सकल कलिल ।
शाश्वतममल नयनमखिलभुवन भुवनप्रदीपो रवि ॥

समस्त देवगणके नाथ, भगवान सूर्यनारायणकी जय हो। वे अपने करनिकरसे सकल कलमलका नाश करते हैं। वे सकल विश्वके नयन हैं, शाश्वत हैं और अमल हैं। वे ही सातों लोकोंके और १४ भुवनोंको प्रकाश देनेवाले हैं।

साम्बने नारदजीसे पूछा कि देवर्षे ! धर्मका मर्म जाननेवालोंने कहा है कि आचार ही प्रथम धर्म है। आचारसे आयु बढ़ती है, आचार अलक्षणोंका नाश करनेवाला है। आचारसे ही मनुष्य सुखका भागी होता है। आचारसे श्री सम्पत्तिका आनंद मिलता है। जिस आचारकी विद्वानोंने इतनी प्रशंसा की है आप मुझे उसी आचारके विषयका उपदेश दीजिये।

देवर्षिने कहा कि अब हम तुमको उस आचारकी ही महिमा सुनाते हैं, जिसके किंचितमात्र आचरणसे आयु, लक्ष्मी और यशकी वृद्धि होती है।

नास्तिक, अश्रद्धावान, निगुरा, शास्त्रमर्यादाउल्लंघनकारी, मर्यादा-रहित और असमय मैथुनकारी न होना चाहिये।

प्रयत्नपूर्वक अक्रोधी, सत्यवादी, अहिंसापरायण, असूयायुक्त, शुचि तथा अकुटिल होना चाहिये। कंकड पत्थरोंको तोड़ते फोड़ते या ठुकराते हुए न चलना चाहिये। तिनके तोड़नेवाला न बनना चाहिये। चाहे जहां बैठे हुए नखोंका मेल न निकालना चाहिये। उच्छिष्ट भोजन न करना चाहिये। बालोंको साफसुथरा रखना चाहिये। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्मार्थका चिंतन करे। आचमनपूर्वक संध्यावन्दन करना चाहिये। प्रातःकाल और सायंकालकी दो सन्ध्याओंको न छोड़ना चाहिये। उदय और अस्त होते हुए आदित्यको पानीमें न देखे। मध्यान्हमें ऊपरभी न देखे। परस्त्री संग न करना चाहिये। केशप्रसाधन, दंतधावन और देवतापूजन मध्यान्हकालमें नहीं करना चाहिये। मूत्र-पुरीपका त्याग जलमें न करे। इनको त्यागते समय नीचे झुककर न देखे और न उस समय बोले। ग्रामके निकट या खड़े हुए खेतमें मूत्र पुरीप त्याग न करना चाहिये। भस्ममें, अग्निमें और विणमें न मूतना चाहिये। खड़े खड़े या चलते हुएभी मूत्र न त्यागना चाहिये। पूर्वाभिमुख होकर भी पेशाब न करना चाहिये। कुत्सित अन्न ग्रहण न करना चाहिये। भोजनोपरात अग्नि को न छूना चाहिये या न तापना चाहिये। तुषमें, केशोंमें, भस्ममें, कपासमें, अस्थियोंमें, उद्वर्तन आदिमें न बैठना चाहिये। पवित्र शान्तिप्रद होमादि अवश्य करता रहे। स्थानरके सहारे खड़ा न हो, न सोवे और न चले। पैर धोकर पोंछ लेनेके बाद ही भोजन और शयन करना चाहिये। अग्नि और ब्राह्मणको

उच्छिष्ट न दे। सूर्य-चन्द्र और नक्षत्रोंको अकारण न देखता रहे। बड़े बूढ़ोंके पधारनेपर सोता, चलता या बैठा न रहे, वरन उठकर उनका अभिवादन करे और 'बैठनेके लिये आसन दे। उनके जानेपर अनुनयपूर्वक विदा करे। एक वस्त्र धारण किये हुए भोजन न करे। नङ्गा होकर स्नान न करे और नङ्गा होकर शयनभी न करे। जूठे मुंह शिरपर हाथ न फेरे। शिरके बाल न कटाये। दोनों हाथोंसे शिरको न खुजाये, शिरसे स्नान कर चुकनेपर तेल न लगाये। घी और शहदको समान मात्रामें मिलाकर सेवन न करे, क्योंकि वह विषके समान हो जाता है। अपवित्रों और पवित्रोंको साथ बिठाकर न जिमाये। जूठे मुंह पुस्तक न पढ़े और न पढ़ाये; क्योंकि ऐसा करनेसे आयु और सन्तानका क्षय होता है। सूर्य, अग्नि, वायु, जल, गौ, ब्राह्मण और गृहनक्षत्रोंसे विमुख होकर न चले। सायंप्रात उत्तराभिमुख होकर और रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर लांग खोलकर मूत्र पुरीष घासफूँससे आच्छादित भूमिपर विसर्जन करे। मामिष श्राद्ध भोजनके पश्चात् सन्ध्यावन्दन न करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और सांपका अपमान न करे। गुरुकी निंदा न करे, चाहे सत्य हो या झूँठ हो। यदि गुरुनिंदा चलते-फिरते दूर-पासमें सुनपड़े तो भूमिपर गिरते हुए मूत्रको ठोकर लगाकर स्नानपूर्वक गुरुनिंदा सुननेका परिमार्जन करले। बहुत तड़के, ठीक दोपहरीमें और घोर अंधेरेमें न आवे-जावे। गौके लिये, ब्राह्मणके लिये, क्षत्रियके लिये, वृद्धजनोंके लिये, बोझ लेकर रास्ता चलते हुए स्त्रीपुरुषोंके लिये, गर्भिणी स्त्रीके लिये

और दुर्बल-जनोंके लिये रास्ता देना धर्म है। अष्टमीको, चतुर्दशी को, पूर्णिमाको और अमावस्याको स्त्रीसंग न करे। वृथा और भ्रष्ट मांस न खाये। क्रोध, परिवाद, पिशुनता, नृशंसता, नंगापन और दुःखदायीपनसे रहित रहे। दूसरोंके छिपे हुए दोषोंको प्रकाशित न करे। हीनों तथा अतिरिक्तांगोंको, रूप-गुण-जाति और सत्य हीनोंको और निंदित तथा विगर्हितोंको मान न दे। नास्तिकता, वेदनिंदा, द्वेष, अभिमान, दम्भ और तीक्ष्णताको वर्जित माने। दूसरोंको दण्ड देनेकी इच्छा न रखे। पत्नीको, पुत्रको, दासको, दासीको, शिष्यको और भाई बन्धुओंको, क्रोधमें आनेपरभी, न मारे। ब्राह्मणकी निंदा करनेवाला, अतिथियोंका अनादर करनेवाला और ग्रहोंकी अवगणना करनेवाला न बने। मूत्र पुरीष विसर्जनोपरान्त यथोचित शौचाचारके बाद, फिर पैर धोकर, घरमें प्रवेश करे। अग्निपरिचारियोंको नित्य भिक्षा देता रहे। पूर्वकी ओर मुख कर-के, सूर्योदय कालमें, दतून करता हुआ न थूके। प्रातःकाल उठतेही गुरुजनों और आचार्यको प्रणाम करे। दन्तधावन किये बिना देवपूजा आदि तथा अन्य कार्योंमें न लगे। पैरपर पैर रखकर न सोये और न बैठे। यम-नियम धर्मका पालन करता हुआ नित्यही सूर्यनारायणकी कथा-वार्ता और पूजामें निरत रहे, नित्यही ब्राह्मण भोजन कराये, विशेषत कथा सुनानेवाले ब्राह्मणको नित्य जिमाये। रात्रिको स्नान न करे। स्नानोपरान्त मार्जन न करे। न्हाकर गीले वस्त्रोंसे न रहे। रक्तमाला धारण न करे। दूसरों के वस्त्र धारण न करे, चाहे अपने जीर्ण और मैले भलेही हों।

इसी प्रकारसे दूसरोंकी शैया, दूसरोंका द्रव्य, दूसरोंके देवता और दूसरोंके आचार्योंको भी स्वीकार न करे। हाथमें नमक न दे। रात्रिको देरसे भोजन न करे। दही-सत्तू भी रातके समय न खाये। अपने लिये आवश्यक अन्नादि निकालकर, शेष अन्न किसी अतिथिको प्रदान कर दे। एक पंक्तिमें बैठकर दही, मधु, पायस और पेय पदार्थ ग्रहण करे। नचाहुआ जूठा अन्न किसीको न दे। भोजनोपरान्त विधिसे आचमन करे। पतित-जनोंकी बातें करना, उनका मुखदर्शन करना और उनका संग करना वर्जित है। परनिंदा-रहित मीठे वचनही बोले। किसीके दोषोंका उद्घाटन न करे। दिनमें स्त्रीप्रसंग न करे। वन्ध्या, अज्ञाता, गर्भिणी, अंगहीना, वृद्धा, सन्यासिनी, उच्चकुलोत्पन्ना, हीनकुलोत्पन्ना, कुरूपिणी, पीली पड़ी हुई, कुष्ट रोगग्रस्ता, योगिनी, चित्रवर्णा, निजकुलोत्पन्ना, मृगी रोगवाली और ज्ञाति-कुलसे-परित्यक्त कन्याको स्वीकार न करे। जिन स्त्रियोंको अगम्या कहा गया है उनका संग न करे। राजकुलकी, मित्रकुलकी, वैद्यकुलकी, बाला, वृद्धा और मृत तथा शरणागत सम्बन्धीकी, एवं ब्राह्मणकी स्त्रियोंसे भोग न करे; वन्ध्या स्त्रीसे भोग न करे सन्ध्याकालमें स्वाध्याय या भोजन न करे; पितृ तर्पण, प्रसाध और पथ्यक्रिया भी न करे। देवता, पितर और नक्षत्रोंके कार्य के लिये पहले शिरसे स्नान कर लिया करे। अग्निमें तलुए न सेंके। प्रयत्नपूर्वक सन्ध्याकालमें प्रेतका ध्यान न करे। इच्छा करनेवाली पराई स्त्रीकी भी रक्षाही करे। दिनमें न सोये, रात्रि

अवसानकालमें भी न सोये। यज्ञके विना अन्यत्र, दर्शनसुखके लिये, न जाय। रात्रिकालमें अकेला कहीं न जाय। सन्ध्या हो जाने के बाद घरमें ही रहे। मातापिताकी आज्ञाका पालन करे— इसमें हित या अहितका विचार भी न करना चाहिये। धनुर्वेद, हाथी–घोड़ेकी सवारी, रथचालनका अभ्यास प्रयत्नपूर्वक कर लेना चाहिये। तर्कशास्त्र, व्याकरण, कला, गांधर्वशास्त्र, पुराण, इतिहास आख्यान, माहात्म्य और विज्ञजनोंके चरितोंका भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। सप्तमीको आदित्यव्रत अवश्य रखना चाहिये। गौको पैर न लगाना चाहिये। गौको तथा रस्सीको लांघना भी न चाहिये। न्यास-विश्वासहारी और अधर्मी न बने। गुरुजनोंके लिये, गौके लिये, ब्राह्मणके लिये और स्त्रियोंकी रक्षाके लिये शूरता दिखाये। अकृतज्ञ भी न बने। मिठाई अकेला न खाये। स्त्रियोंकी और उनके भाईबन्धुओंकी वृत्ति न हरे। कूटसाक्षी न बने। शरणागतको कदापि न तजे। अपने किये हुए दानकी बड़ाई न करता फिरे। कांसीके वर्त्तनमें और अन्य गौका वत्स दिखाकर गायका दूध न दोहना चाहिये। रजस्वला पत्नीसे संग न करना चाहिये। समविषम दिनोंका ध्यान रखकरही, रजस्वला पत्नीके ४ दिन निकल जानेपर, शुद्धिपूर्वक, केवल पुत्र या पुत्रीकी कामनासेही एक शैया पर पत्नीके साथ शयन करे। इसमें भी मनको विकाररहित रखे। अग्निमें कोई अमेध्य वस्तु न डाले। वर्षा होते समय दौड़कर न चले। हाथसे हवा न करे। शुक्ल वस्त्र पहननेवाला बना रहे। नख केशादिकको बढाकर न रखे। जलमें अपनी छायाको न देख।

भार्याके साथ एक थालीमें भोजन न करे। सुखपूर्वक बैठी या लेटी हुई, पुरुषका संग करती हुई, अंगडाई—जंभाई लेती हुई, या नंगी परायी स्त्रीको न घूरे। अग्निमें फूंकें न मारे। पैरोंसे भी न तापे। अग्निको उलांघकर भी न चले। पैरोंसे अग्निको दाबकर बुझाये भी नहीं। भूमिपर लकीरें न काढे। गन्दी-सड़ी चीजोंको जलमें न फेंके। अकेले घरमें न सोये। अग्निकार्योंमें, गुरु—देव—द्विज—यति—गो-सेवाकार्योंमें और अध्ययन—भोजन आदिके समय सीधे हाथसेही काम ले। पराये खेतमें भी चरती हो तो भी गौको मारकर न भगाना चाहिये। न किसीसे कहकर निवारण कराना चाहिये। अधार्मिक देशमें न रहना चाहिये। व्याधि-बहुल मार्गसे भी न जाना चाहिये। पर्वतमय स्थानोंपर अधिक दिनोंतक न रहना चाहिये। वृथा चेष्टा और अंजलिसे जलपान करना तथा अभक्ष भक्षण विषयोंमें कुतूहल भी न रखना चाहिये। रागरंग, नृत्यगीत. बाजेगाजे इत्यादिमें विरक्तभाव बनाये रखना उचित है। कांसीके बर्त्तनमें पैर धोना चाहिये। उदय होते हुए सूर्यके तापसे, मुर्देके धुएँसे, बुहारी झाड़की उड़ती हुई धूलसे बचना चाहिये। जुआ न खेलना चाहिये। लेट लेट भोजन न करना चाहिये। जहां हो सके वहां बाहुबलसे नदियोंको (पैरकर) पार न करना चाहिये। जहांतक सम्भव हो वृक्षोंपर न चढना चाहिये। सन्दिग्ध नौकामें न बैठना चाहिये। कुएमें न तैरना चाहिये। देव-द्विज-गुरु-राजा-स्नातक और आचार्यके मैथुनकार्यमें प्रवृत्त होते समय, उनके निकट न जाना चाहिये। भोजन करके स्नान

न करना चाहिये। हारे थके हुए भी स्नान न करना चाहिये और घोर रात्रिके समय भी स्नान न करना चाहिये। बिना जाने हुए जलाशयमें भी स्नान न करे। वैरी, वैरियोंके सहायक, अधार्मिक और तस्करोंकी सेवा न करे। सत्यप्रिय बने और सत्य बोले। अप्रिय–सत्य या प्रिय–असत्यभी न बोले। शुष्क बात या वैरभाव न करे। सदा मंगलाचरणयुक्त रहे। मंत्रक्रिया कालके अतिरिक्त अंगोंको, नखोंको, नाभिको और हथेलियोंको न छुए। गुप्तस्थानोंके रोम साफ करता रहे। देव–द्विजोत्तम–गुरु–सेवी बने। ईश्वरका भजन करता रहे। परवश बनानेवाले कर्मोंको त्याग दे। सुखकी चाहना करनेवाला आत्मवशी बने। अन्तरात्मामें सन्तोष पैदा करे और धार्मिक रहे। धर्मरहित अर्थ और काम भी वर्जित है। वचनमें, हाथोंमें, पैरोंमें और नेत्रोंमें चपलता न रखे। ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मातुल, अतिथि, आश्रित, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, स्वजातिबन्धु रिश्तेदार, माता, पिता, पत्नी, पुत्री और दास–दासियोंसे विवाद न करे। गौ, सोना, भूमि, घोड़ा, वस्त्र, अन्न, तिल, का दान विद्वानही ले और विद्वानकोही दे। किसी दूसरे व्यक्तिके कुए बावड़ी आदिमें स्नान न करे, नदीमें या देवस्थानके जलाशयमें स्नान करे। सुनारका अन्न न ले। अनध्यायोंसे बचे। अन्न, तिल, दीपक, भूमि, स्वर्ण, गृह, वस्त्र, गौ–इनको विद्वान-ब्राह्मणको ही अर्पित करना चाहिये। अतिशय सुख, सन्तान, धनवैभव, घर, स्वर्ग, मोक्ष, भार्या, सर्वैश्वर्य और ब्रह्मप्राप्तिकी कामना रखनेवालोंको छत्री और पादुका दान करने चाहिये।

उत्तमोत्तम सम्बन्ध, धन और कुलोन्नति चाहनेवालोंको शैया, घर, कुशबंध, पुष्पोदक, मणि, दहीमत्स, पय, शाक और रत्नोंका दान विद्वानोंको देना चाहिये। देवता-गुरु-अतिथि और सेवक-जनोंको तुष्टि देनेवाले आत्मज्ञाननिरत होते हैं।

इतिते कथित सम्यगाचारः पुण्य लक्षणाः।
आयुर्लक्ष्मी यशोभूतिकारणं ब्रह्मनिर्मितम्॥
आचारयुक्तः पुरुषः प्रेत्यचेह च मोदते।
आचाराद्वर्द्धते ह्यायुराचारोह्न्य लक्षणा॥
दुराचारेहि पुरुषो लोके भवति निंदित।
दुष्टभागींच सतत व्याधितोल्पायुरेवच॥
तस्मीद्भवेत्सदाचार. समुदा श्रीरिनेर्नर।
देवस्य प्रियतामेति लक्ष्मीं विन्दति निश्चयम्॥

हमने, यह पुण्यलक्षण सदाचारका वर्णन कर दिया है। यह सदाचार आयु, लक्ष्मी, यश, वैभव देनेवाला है। आचारयुक्त पुरुषही सुख और उन्नतिको प्राप्त होता है; आचारसे आयु बढती है; यही मोक्ष दिलानेवाला है। दुराचारसे इस लोकमें निन्दा होती है और मनुष्य मंदभागी तथा रोग-शोक युक्त रहता है। अतः सूर्यभक्तको सदा प्रसन्नतापूर्वक सदाचारी ही रहना चाहिये; इसीसे उस लोकमें सूर्यनारायणकी प्रसन्नता मिलती है और इस लोकमेंभी लक्ष्मी प्राप्त होती है।

इति श्री हिन्दी सांबपुराणे आचार-विचार वर्णन नामक
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(४५) छत्री और पादुका दानका महत्व

यह कथा सुनकर सांब बोले कि महाराज, आपने हालमेंही बताया है पूर्वकालमें छत्र सूर्यनेही निर्मित किया है और यह भी आपने कहा है कि छत्री और पादुकाका दान करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं। परम कृपालु नारदजी महाराज, यह तो बताइये कि इन दोनों चीजोंको पूर्वकालमें सूर्यनारायणने स्वयम् किस प्रकार पैदा किया था।

देवर्षिने कहाः—यह पूर्वकालकी कथा भी, मैं, तुझे सम्यग रूपसे सुनाता हूं। सुन! पुराकालमें भृगकुलोत्पन्न जमदग्निऋषि धनुर्विद्याका अभ्यास करते थे तो, रेणुका, जलती हुई धूपमें, दौड़दौड़कर, धनुपसे निकले हुए तीरोंको पुनः चुन लाया करती थी। उनको इसमें बड़ा सुख होता था। एक दिन ज्येष्ठ महीनेकी दोप्रहरीमें धूप बहुत तीव्र पड़ रही थी। इस दिन भी रेणुकादेवी इसी प्रकार दौड़दौड़कर तीरोंको उठा लानेमें संलग्न थी। जमदग्नि ऋषि बोलेः—हे विशालाक्षी! मेरे तीरोंको जरा दौड़दौड़कर उठातो लाओ! जब तुम लेआओगी तबही मैं पुनः उनको निशानेपर छोडूंगा।

रेणुका दौड़कर गयी। पर धूप बहुत तेज थी। अतः वृक्षोंकी छायाका आश्रय लेकर बचती-बचाती हुई तीर लेने गयी और वृक्षकी छायामें विश्रांति लेकर पैरोंकी जलन थमनेपर वह लौट-

आयी। किन्तु पतिके शापके भयसे उसने लौटनेमें जल्दीही की थी। उस यशस्विनीके इतना करनेपर भी जमदग्नि ऋषि थोड़ी गर्मीसे बोले—इतनी देर क्यों लगादी ?

रेणुकाने कहा—मैं क्या करती ? सूर्य तपते ही तप रहे हैं। धूपकी तेजीने मेरे मस्तकको और पगोंको झुलसा डाला है। इसी लिये क्षणभर, मैंने, वृक्षकी छायामें विश्राम कर लिया था।

यह सुना तो जमदग्नि ऋषि सूर्यपर ही क्रुद्ध होगये। क्रोधाविष्ट अवस्थामें ही उन्होंने पुनः धनुषबाण संभाला। उनको रुष्ट हुए समझकर सूर्यने ब्राह्मणका रूप धरकर पूछा कि हे द्विजदेवता इतने अप्रसन्न किस लिये हो रहे हो। सूर्य तपता है तो जगको जल भी तो देता है। यदि किरणें तपेंगी नहीं तो फिर मेघ कहासे आयेंगे और फिर किधरसे वर्षा होगी ? वर्षासे अन्न पैदा होता है और अन्नसे ही प्राणी प्राणवान होते हैं। वेदोंमें इसीलिये कहा गया है कि—"अन्नो वै प्राणः" अर्थात् अन्नही प्राण है। हे ब्राह्मण देवता, इन रश्मियोंके तपनेसे ही तो सातों द्वीपोंमें वर्षा होती है। वर्षासे अन्न और औषधियोंकी उत्पत्ति होती है तभी तो तुम्हारे धर्मकर्म और यज्ञयाग चलते हैं। तभी तो तुम्हारे व्रत और उपनयनादि संस्कार चलते हैं। तभी तो गोदान होते हैं—तभी तो वर्णाश्रम धर्मकी सब विधियां संपन्नताको पहुंचती हैं। हे जमदग्नि ऋषि, क्या आप नहीं जानते कि इन रश्मियोंके तपनेपर ही सत्र, दान, संयोग, बीज आदि निर्भर करते हैं। क्या आप नहीं जानते कि इनके तपनेसे ही संसारभरकी रमणीय वस्तुएं

मिलती हैं। इसलिये हे भृगुकुलनन्दन जमदग्निजी, आप क्रोध छोड़कर सूर्यसे वरदान मांगिये—आपको क्या चाहिये?

यह सुनकर जमदग्नि ऋषि परम कैंकर्यपूर्वक सूर्यनारायणकी शरणमें आगये। सूर्यनारायणने यह वचन ब्राह्मणका रूप धरकर जमदग्नि ऋषिसे कहे थे। द्विजरूपधारी सूर्यने उनसे यह भी कहा कि आप तो जानते ही होंगे कि सूर्य कब चलते रहते हैं और कब ठहरते हैं। जमदग्नि ज्ञान-गम्भीर होकर बोले कि ठीक मध्यान्ह-कालमें ही सूर्यनारायण क्षणभरके लिये आकाशमें ठहरते हैं—अनन्तर सदा चलतेही रहते हैं।

सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर जमदग्निको अपने छत्रके नमूनेपर निर्मित छत्री दी और पादुकाएं दीं। उन्होंने कहा कि इनको धारण करनेवाले मेरी रश्मियोंके तापसे अपने शिरों और पैरोंकी रक्षा कर सकेंगे। छत्री और पादुकाएं देकर श्रीसूर्यनारायणने यह भी वरदान दिया कि आजसे जो व्यक्ति पादुकाएं और छात्रियाँ ब्राह्मणोंको दान करेंगे वे स्वर्गलोकमें अप्सराओंके साथ निवास करेंगे। पादुकाओंका दान करनेवाले गोलोक पायेंगे । इतना सब कह-सुनकर द्विजरूपधारी सूर्यनारायण अन्तर्ध्यान होगये ।

हे सांब, इस दानका मूल और महत्व, मैंने भी, सूर्यनारायणके वचनानुसारही तुझे सुना दिया है।

इति श्रीहिन्दी सांबपुराणे छत्र-पादुकादान माहात्म्य वर्णन नामक पञ्चचत्वारिंशोऽध्याय ॥४५॥

ॐसिद्धगणेशायनम

(४६) सप्तमी व्रतकी विधि

सावने कहा,—देवर्षे, अब आप मुझे सप्तमी व्रतकी विधिका ज्ञान कराइये। नारदजी बोले,—भक्तिभावमें जो पूछा है वही सब सुनाता हूं। यह विधि स्वय सूर्यनारायणकी बतायी हुई है।

जब सूर्यनारायण उत्तरायणमें आजायें और उस दिन शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथि हो—रविवार हो और पुष्य नक्षत्र हो तो ऋषियोंने इसदिनको सर्वकामफलप्रदायिनी सप्तमी माना है। यों, सात सप्तमियां परमोत्तम कही गयी हैं। इन सातोंके नाम ये हैं:—

१ अर्कसम्पुटिका सप्तमी, २ मरिचा सप्तमी, ३ निम्बपत्रा सप्तमी, ४ फलसप्तमी, ५ अनोदिनी सप्तमी, ६ विजय सप्तमी, और ७ कामिका सप्तमी।

सब सप्तमियोंमें भक्तोंको ब्रह्मचारी, शौचयुक्त, जितेन्द्रिय, दात, जपहोमपरायण और सूर्यार्चनपर रहना चाहिये। पचमीको निर्यास करे। षष्ठीको ब्रह्मचर्यसे रहते हुए मधुमांसादिसे परहेज रखे। इन सप्तमियोंके व्रतमें, प्रति सप्तमीको एक-एक करके अर्क-पुष्प, कालीमिर्च, निम्बपत्र, आम, ग्रहण करते हुए, हरबार सख्या बढाते चलना चाहिये। फिर द्वितीय वर्ष इसी क्रमसे उनकी संख्या कम करना चाहिये।

पाचवीं सप्तमीमें अन्नजल त्यागकर केवल वायुभक्षणका विधान है।

कामिका सप्तमीके व्रतके दिन जुदेजुदे घड़ोंमें नाम और कामनाएं लिख-लिखकर भरदे। फिर किसी बालकसे निकलवाकर देखे तो कामनाकी सिद्धि या असिद्धिका हाल विदित हो जाता है।

हे साम्ब, यह सप्तमीव्रत स्वयं सूर्यनारायणने बताया है। जो इस व्रतको करता है वह सर्वपापोंसे मुक्त हो जाता है।

अर्कसम्पुटिकासे समृद्धि, मरिचासे प्रियसंगम, निम्बपत्रासे रोगनाश, फलसप्तमीसे पुत्र, अनोदन्यासे धनधान्य, विजयसप्तमीसे विजय और कामिकासे सर्वकामनाओंकी प्राप्ति होती है। इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं है।

नर हो या नारी हो,—जो भी सप्तमीका व्रत करता है उसको सूर्यलोक मिलता है। उसके लिये तीनों लोकोंमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है।

जो फल बड़ी तपस्यासे मिलता है, जो फल शम-दमकेद्वारा, योगिजन-सुलभ, मार्गसे मिलता है, जो फल बड़ेबड़े जपतपों, दानों और हवनोंसे मिलता है, वह फल सहजही सूर्यनारायणके भक्तोंको सूर्यसप्तमीका व्रत रखने मात्रसे मिल जाता है। अन्तमें सूर्यलोकमें निवास होता है। ऐसे भक्तजन ब्रह्म, इन्द्र और रुद्र लोकोंमें भी बाधा.विना आ-जा सकते हैं।

सप्तमीका व्रत रखनेवालोंके कुलमें न कोई अन्धा होता है, न कोढ़ी होता है, न क्लीव होता है, न कोई अङ्गहीन होता है

ॐसिद्धगणेशायनमः

(४६) सप्तमी व्रतकी विधि

सांबने कहा,—देवर्षे, अब आप मुझे सप्तमी व्रतकी विधिका ज्ञान कराईये। नारदजी बोले,—भक्तिभावसे जो पूछा है वही सब सुनाता हूं। यह विधि स्वयं सूर्यनारायणकी बतायी हुई है।

जब सूर्यनारायण उत्तरायणमें आजायँ और उस दिन शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथि हो—रविवार हो और पुष्य नक्षत्र हो तो ऋषियोंने इसदिनको सर्वकामफलप्रदायिनी सप्तमी माना है। यों, सात सप्तमियां परमोत्तम कही गयी हैं। इन सातोंके नाम ये हैं:—

१ अर्कसम्पुटिका सप्तमी, २ मरिचा सप्तमी, ३ निम्बपत्रा सप्तमी, ४ फलसप्तमी, ५ अनोदिनी सप्तमी, ६ विजय सप्तमी, और ७ कामिका सप्तमी।

सब सप्तमियोंमें भक्तोंको ब्रह्मचारी, शौचयुक्त, जितेन्द्रिय, दांत, जपहोमपरायण और सूर्यार्चनपर रहना चाहिये। पचमीको निर्यास करे। षष्ठीको ब्रह्मचर्यसे रहते हुए मधुमांसादिमें परहेज रखे। इन सप्तमियोंके व्रतमें, प्रति सप्तमीको एक एक करके अर्क-पुष्प, कालीमिर्च, निम्बपत्र, आम, ग्रहण करते हुए, हरबार संख्या बढाते चलना चाहिये। फिर द्वितीय वर्ष इसी क्रमसे उनकी सख्या कम करना चाहिये।

पांचवीं सप्तमीमें अन्नजल त्यागकर केवल वायुभक्षणका विधान है।

ठकर सूर्यलोकको जाते हैं जिसमें बहुमूल्य वैडूर्यमणि आदि और किंकीणी-जालकी शोभा होती है। वे विचित्रमाला आदिसे सुशोभित रूप पाते हैं। अप्सराएं उनके सामने गुण गाती जाती हैं। बहुत कालतक स्वर्गसुख पाकर, तपक्षय होनेपर, ऐसे धर्मात्मा बड़े कुलोंमें जन्म लेते हैं।

जिनको प्रतिमास इस प्रकार व्रताचरण करना है उनको प्रतिमास सूर्यके बारह नामोंमेंसे एक-एकको लेकर पूजा करनी चाहिये।

चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान, आषाढ़में अंशुमान, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, क्वारमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भगवान, फाल्गुनमें त्वष्टा।

यह विधान परम रहस्यमय है। इसको अशिष्यको न देना चाहिये। जो सूर्यभक्त नहीं हैं उनको भी यह रहस्य न देना चाहिये। किसी पापी और दुरात्माकोभी यह विद्या न बतानी चाहिये।

जो नर केवल इस विधिका पाठभी करेंगे वेभी इस लोकमें सुख पायेंगे और अन्तमें सूर्यलोकमें जायेंगे।

इति श्रीहिन्दी सांबपुराणे सप्तमी-कल्प-वर्णन
नामक षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्याय. ॥ ४६ ॥

और न निर्धन होता है। सप्तमीव्रत रखनेवाले सुन्दर स्त्रियां, हाथी घोड़े, अनेक प्रकारके वस्त्रादि तथा अन्य सब प्रकारके ऐश्वर्यको सहजही पा-लेते हैं।

विद्यार्थीको विद्या मिलती है,
धनार्थीको धन प्राप्त होता है,
भार्यार्थीको सुन्दरी पत्नी मिलती है,
पुत्रार्थीको पुत्र मिलता है,
भोगार्थीको अनेक भोग मिलते हैं।

यदि मोहवश, प्रमादवश या लोभवश व्रत भंग हो जाय तो उसको केशोंका मुण्डन कराकर तीन दिन निराहार रहकर व्रतपूर्वक तपस्या करनी चाहिये। इतना प्रायश्चित्त करचुकनेपर वह फिर सप्तमीव्रतका व्रती होसकता है।

सात सप्तमियोंका व्रत रखते हुए सूर्यनारायणका पूजन करनेवाले, ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं।

हे साम्ब, एकाग्र मनसे वह सबभी सुनो जो सप्तमी व्रतोंके लिये शास्त्रोंमें वर्णित है। सप्तमीव्रत और भी कई विधियोंसे किया जाता है। वर्ष भरके १२ महीनोंमें शुक्ल पक्षकी १२ सप्तमियां आती हैं। जो जन वर्षभर १२ सप्तमियोंको व्रत रखकर विधिसे सूर्यनारायणकी पूजा करते हैं और व्रतके दिन जो केवल गोमय, यव, शीर्णपत्र, क्षीरका भोजन करते हैं, या फिर एकबार भिक्षान्नमात्र लेकर रहजाते हैं, उनको महाफल प्राप्त होता है। बहुतसे केवल जलपान पूर्वकही व्रत करते हैं। वे अन्तमें ऐसे सुवर्णके विमानमें

बैठकर सूर्यलोकको जाते हैं जिसमें बहुमूल्य वैडूर्यमणि आदि और किंकीणी-जालकी शोभा होती है। वे विचित्रमाला आदिसे सुशोभित रूप पाते हैं। अप्सराएं उनके सामने गुण गाती जाती हैं। बहुत कालतक स्वर्गसुख पाकर, तपक्षय होनेपर, ऐसे धर्मात्मा बड़े कुलोंमें जन्म लेते हैं।

जिनको प्रतिमास इस प्रकार व्रताचरण करना है उनको प्रतिमास सूर्यके बारह नामोंमेंसे एक एकको लेकर पूजा करनी चाहिये।

चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान, आषाढ़में अंशुमान, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, क्वारमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भगवान, फाल्गुनमें त्वष्टा।

यह विधान परम रहस्यमय है। इसको अशिष्यको न देना चाहिये। जो सूर्यभक्त नहीं हैं उनको भी यह रहस्य न देना चाहिये। किसी पापी और दुरात्माकोभी यह विद्या न बतानी चाहिये।

जो नर केवल इस विधिका पाठभी करेंगे वेभी इस लोकमें सुख पायेंगे और अन्तमें सूर्यलोकमें जायगे।

इति श्रीहिन्दी साम्बपुराणे सप्तमी-कल्प-वर्णन नामक षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्याय ॥ ४६ ॥

ॐसिद्धगणेशायनमः

(४७) जपयज्ञ विधि वर्णन

देवर्षि नारदजीने इतनी कथा सुनाकर कहा कि हे यदु अब हम जप-यज्ञ विधि बतायेंगे, क्योंकि—

सर्वेषामेव यज्ञानां जपयज्ञो विशिष्यते।
कृतेन विधिनानेन प्रीतो भवति भास्कर ॥

सब यज्ञोंमें जप-यज्ञ अधिक महत्व रखता है। विधिसे जप-यज्ञ किया जाय तो सूर्यनारायण अवश्य प्रसन्न होजाते हैं।

यदन्यत्कुरुते कर्म यदि वा न करोति च।
कृतेन जपयज्ञेन परांसिद्धिमवाप्नुयात् ॥

अन्य विधियोंसे कोई और कर्म किया जाय तो भी अच्छा, न किया जाय तो भी अच्छा है। खाली जप-यज्ञ ही किया जायगा तो परम सिद्धियां प्राप्त होजायंगी। जिनसे बड़े-बड़े पाप बनगये हैं या भारी अपराध हुए हैं, वे भी सूर्यनारायणका जप करके पापमुक्त हो जाते हैं। न्याससहित विधिपूर्वक जप करनेसे असुरों और दुष्टोंका नाश होजाता है। १ प्रवाल, २ स्वर्ण, ३ मुक्ता, ४ मणि, ५ रुद्राक्ष, ६ कमल, ७ दर्भा, ८ अरिष्टक ९ जीवक और १० शंखकी मालासे सूर्यनारायणका जप करना उचित है।

शब्द, काया और मनोवृत्तियुक्त रूपमें, जप तीन विधिसे कहा गया है। १००. १००० और १०,००० मालाका जप नियमसे किया जाता है—इसकाभी त्रिविध फल मिलता है। मणिमालासे ५०,०००, रुद्राक्षकी मालासे १ लाख, कमलकी मालासे ८,००० हजार, दर्भोकी मालासे ४०००, गुणित फल मिलता है।

प्रवाल या मूंगेकी मालापर जप करनेसे अनन्त गुने फलकी प्राप्ति होती है। स्वर्णके दानोंकी मालापर जप करनेका फल १ करोड़ गुणित है। मोतीकी मालापर जपका फल १ लाख गुणित होता है। अरिष्टाक्षाकी मालापर हजार गुना फल मिलता है। जीवककी मालापर १ सौ गुणित और शंखकी मालापर जप करनेका फल ५०० गुणित होता है। जप करते समय थूकना, बोलना, अंगड़ाई या जम्भाई लेना न चाहिये। ऐसी बात हो जाय तो अङ्ग-न्यास और आचमनादि करके जपका फिर आरम्भ करे। माला हाथसे छूटजाय तो उसको हृदयसे लगाकर फिर जप आरम्भ करे। सीधे हाथके अंगूठेसे और बीचकी अंगुलीसे पकड़कर एक-एक मनकेपर जप करता रहे। माला १०८ मनकोंकी होनी उचित है। इससे आधी ५४ मनकोंकी भी हो सकती है और २७ मनकोंकीभी रखी जा सकती है। जप करते समय सुमेर या संख्या-ग्रन्थिकाको उल्लंघन न करना चाहिये। छोटी मालापर जप करे तो १०८ की संख्या पूरी मानकरही मालाओंकी गिनती समझे। निश्चल बैठकर जप करना उचित है। जप करनेके लिये इष्टदेवके अभिमुख होकर संयत मनसे बैठना चाहिये। जप-यज्ञके समय ग्रहपीड़ा होने लगे, दुःस्वप्न आने लगें या अन्य प्रकारके, विघ्नजनित, काम हों तो शान्तिके निमित्त १०८ बार सावित्रीका जप करके पुनः अपना कार्यक्रम आरम्भ करे। इस प्रकारसे, मैंने, तुझे पुण्य जपविधि बतादी है। अब सम्यगरूपसे मुद्राओंके लक्षण सुनाते हैं।

इति श्रीहिन्दी सांबपुराणे जपयज्ञविधि नामक
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥४७॥

ॐ सिद्धगणेशायनमः

(४८) मुद्रा लक्षण वर्णन

हे यदुनन्दन, अब मुद्रालक्षणकी वार्त्ता सुनो; सम्यग रूपसे सुनाते हैं। [मुद्रा प्रकरण योगियोंके लिये है और उसका रहस्य लिखकर नहीं समझाया जासक्ता। हमने विचार किया था कि इन मुद्राओंके ब्लाक बनवाकर दिये जायँ, पर शीघ्रतामें और वर्तमान परिस्थितियोंमें यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सक्ता। इस लिये मुख्य मुद्राओंके नामही दिये जाते हैं जिनका जप करते समय अङ्गन्यासके बाद नमःपूर्वक उच्चारण करना पर्याप्त होता है।]

(रथमुद्रा) रथाय नमः; (वासुकी मुद्रा) वासुके सर्पाय नम; (वाजिनी मुद्रा) वाजिन्यै नमः; (अरुण मुद्रा) अरुणाय नमः; इन्द्राय नमः; त्वष्टाय नमः; व्योमाय नमः; यमाय नमः; सूर्याय नमः; अंशुमानाय नमः; स्वर्णरेतसे नमः; वरुणाय नमः; (कवच मुद्रा) कवचाय नमः; वरणाय नमः; खड्गाय नमः; व्योमशिखायै नमः।

इति श्रीहिन्दी साम्बपुराणे मुद्रालक्षण वर्णन नामक

अष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४८ ॥

ॐ सिद्धगणेशायनम.

(४९) शौचस्नानविधि

नारदजी बोले, हे साम्ब! शौच-स्नान-करन्यास-रविकरण-आन्हिक कर्म, और योगविद्या, विशेप रूपसे गोपनीय रखनी चाहियें। दीक्षितको, सूर्यभक्तको और श्रद्धावानकोही यह रहस्य बताने चाहियें। यह शास्त्रसम्मत-विधियां सब-फल-प्रदायिनी हैं। शौच साफसुथरी जगहमेंही जाये। पहले आचमन करले। फिर कानोंपर यज्ञोपवीत चढ़ाकर मौनपूर्वक मुक्तकच्छ जलाशयके निकट अभिमुख होकर, शौच जाये। जल और मृत्तिका अपने साथ रखनी चाहिये। मस्तकको वस्त्रसे ढक लेना उचित है। मौन रहना चाहिये।

इति श्रीहिन्दी सांबपुराणे शौचस्नान विधि वर्णन नामक एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय. ॥ ४९ ॥

ॐ सिद्धगणेशायनम

(५०) पिण्ड पूजा विधान

हे साम्ब ! अब हम पिण्ड पूजा विधान सुनाते हैं। यह वस्तु मन्त्र-मुद्रादिके योगसे मनोवाञ्छित फलप्रदायिनी है। अङ्गुष्ठ आदिके क्रमसे पहले मूलमंत्रके साथ विन्यास करलेना चाहिये। फिर अपने शरीरका विन्यास करलेनेके अनन्तर इस क्रमसे इष्ट देवकी पूजा करनी चाहिये।

रथमें—ॐ विश्वात्मनेनमः

घोड़ोंको—ॐ हरिम्योनमः

वासुकीको—ॐ सर्पायनमः

चक्रको—ॐ त्रिनामयेनमः

अरुणको—ॐ अरुणायनमः

पद्मको—ॐ ज्वलिग्निधात्रेनम

सवाहनमंत्र—ॐ आदित्याय हेम मिहिरागच्छागच्छ स्वर्वर्ग इस्व ठः ठः

मूलमंत्र—ॐ उपोल्काय ठ ठः

स्थापनमंत्र—ॐ व्योमव्यापिने सर्वलोकाधिपतये तिष्ठ ठः ठः

हृदयमें—ॐ अर्काय ठ ठ

शिरमें—प्रदीप्ताय ठ ठ

शिखामें—ॐ विपिटये ठ ठः

नेत्रोंमें—ॐ जगच्चक्षुपे ठः ठः

कवच—ॐ प्रभाकराय ठः ठः

अस्त्र—ॐ महातेजसे हुं फट्

संरोधनमंत्र—ॐ गणाधिपतये सहस्र किरणाय संरोधात्मने ठः ठः

सान्निधानमंत्र—ॐ आकाशविकासिने जगच्चक्षुपे सान्निध्यं कुरु कुरु ठः ठः

पाद्यमंत्र—ॐ हूं रिटिचिरिटये दीप्तांशवे नम :

अर्घमंत्र—ॐ गभस्तिने केलिकिलि कालिकालि सर्वार्थसाधनं काकिकाकि हुं नमः

स्नानमंत्र—ॐ सवित्रे वरुणाय नमः

वस्त्रमंत्र—ॐ पपनेशाय सहस्र-हस्त-तनवे नमः

गंधमंत्र—ॐ पिंगलाय अच्छच्छले नम

पुष्पमंत्र—ॐ अहिअहि लिहिलिहि हिममालाधर तेजोधिपतये नम

धूपमंत्र —ॐ ज्वलितार्कायनमः

अंग-नमस्कार—ॐ मिहिराय चित्रधारिणेनमः। ॐ अङ्गेभ्योनमः ॐ महाश्वेतायैनमः ॐ दण्डपाणयेनमः ॐ अरुणादेव्यैनमः ॐ पिङ्गलायै नमः ॐ अरुणादिभ्यो हुं नमः ॐ हरिकेशादिराशिपतिभ्यो नमः। ॐ पुञ्जिकस्थल्याद्यप्सरेभ्यो नम· ॐ दीप्ताननादि किरणेभ्यो नमः ॐ क्षुपादिभूत मातृभ्योनमः। ॐ ग्रहेभ्यो हुं नमः। दिग्देवेभ्यो नमः।

दीपमंत्र—ॐ तेजोधिपतये नम

नैवेद्य मंत्र—ॐ अर्कायग्रहाणामृते नमः

पुन.अर्घ—ॐ जलकुंदलाय दिव्यतोयभिप्रियाय नमः

जपन्यासमंत्र—ॐ सुपोल्काय ठः ठः। ॐ अंशुमतेदेवाय गोपतये ठ ठः

स्तोत्रमंत्र—ॐ नमस्ते दिव्यरूपाय सर्वभूतात्मने नमः। सर्वतेजोधिपतये भानवे लोक चक्षुषेनमः।

इसी स्तोत्रसे, पूर्वोक्तविधानपूर्वक, सद्योफलप्राप्तिके निमित्त हनन भी करे।

संहारमंत्र—ॐ संहर संहर विरोचनाय ठ ठ

शुद्धिमंत्र—ॐ शान्तात्मने सर्वलोकप्रियाय ठ ठ

नमस्कारमंत्र—ॐ खखोल्काय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि, तन्नोरवि प्रचोदयात् ठः ठः [कोई कोई इसको सूर्यगायत्री मंत्रभी मानते हैं]

विसर्जनमंत्र— गच्छ गच्छ स्वर्गेण द्वादशादित्य निग्रहः ॐहिलिहिलि गच्छदेव यथागतं स्वाहा।

विहारमंत्र—ॐ चण्डपिंगलाय ठः ठ

यह प्रथम पदपिण्डपूजाविधि भुक्ति, मुक्ति, पुण्य, बल और आरोग्य देनेवाली है। द्वितीय संक्षिप्त पिण्डपूजा विधान यह है।

ॐ रथांगेभ्योनमः — ॐ विश्वात्मने नमः

ॐ खखोल्काय ठ ठः

हृदयमें— ॐ अर्काय ठः ठः

शिरमें— ॐ दीप्ताय ठः ठः

शीर्षमें— ॐ चिपिटये ठः ठः

नेत्रोंमें– ॐ जगच्चक्षुपे ठः ठः
कवचमें– ॐ प्रभाकराय हुं ठः ठः
अस्त्रमें– ॐ महातेजसे हुँ फट्
देवाङ्गमें– देवाङ्गेभ्यो नम
महश्वेताको– ॐमहाश्वेतादिभ्यो नमः
अरुणको– ॐ अरुणादिभ्यो नमः
अश्वोंको– ॐ हरिकेशादिभ्यो हुं नमः
अप्सराओंको– ॐ पुंजिकस्थल्यादिभ्यो नमः
गणोंको– ॐ गणाधिपेभ्यो नमः
छाया संज्ञाको– ॐ छायादिभ्यो नमः
ग्रहोंको– ॐ ग्रहेभ्यो हुं नमः
दिग्देवताओंको– ॐ दिग्देवेभ्योनमः

सबके लिये यथारीति आवाहन हृदयमें करता चले।

इति श्रीहिन्दी सांबपुराणे पिण्ड-पूजाविधान
नामक पंचाशत्तमोऽध्याय. ॥ ५० ॥

ॐ सिद्धगणेशायनम,

(५१) विस्तृत पूजा प्रकरण

(१) ग्रहों तथा (२) दिग्देवताओंकी पूजाके मंत्र ये हैं—

(१) ॐ चन्द्राय हुं नमः । ॐ मङ्गलाय हुं नम ।
ॐ बुधाय हुं नम । ॐ बृहस्पतये हुं नम ।
ॐ शुक्राय हुं नम । ॐ शनैश्चराय हुं नमः ।

(२) ॐ इन्द्रायसुराधिपतये नम ।
ॐ अग्नये तेजोधिपतये नमः ।
ॐ यमाय प्रेताधिपतये नम ।
ॐ निर्ऋतये रक्षोधिपतये नम ।
ॐ वरुणाय जलाधिपतये नम. ।
ॐ वायवे प्राणाधिपतये नम ।
ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये नम ।
ॐ शङ्कराय सर्वात्मने नमः ।
ॐ विद्याधिपतये नम ।
ॐ ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः ।
ॐ शेषाय सर्वनागाधिपतये नमः ।

अब हम स्नानकी उत्तम विधि बताते हैं। तीर्थमें या तलावादि के निर्मल जलमें स्नान करे। मृत्तिका लेपनपूर्वक न हो सके तो मनसे कल्पना करले कि मैंने मृत्तिका मलकर शरीरशुद्धि करली है। फिर पुण्यतीर्थोंके नाम लेता हुआ और उनका ध्यान करता

हुआ जलमें प्रवेश करे। मंत्रपूर्वक शिरसे स्नान कर लेनेपर सूर्य-नारायणका ध्यान करे। फिर अंगन्यास करे। मुद्राध्यान करे। फिर प्राणायाम करे।

पूरक (वायु खींचते हुए) बायें नथनेसे करे और जाठर-अग्निको जगाये।

कुम्भक द्वारा वायुको रोककर प्रज्वलित अग्निसे शरीरके भीतरके कल्मषोंके जलानेका ध्यान करता रहे।

रेचक (यानी वायुको दाहिने नथनेसे छोड़ते हुए) हृदयकी शुद्धिका ध्यान करे। फिर सूर्यतेजको पीनेका ध्यान करता हुआ पूरक प्राणायाम करे। यह तेज मेरे शरीरमें, हृदयमें, भ्रूमिमें, मूलमें, नेत्रोंमें, करोंमें व्याप्त होगया है—ऐसा ध्यान करता रहे। पुनः तत्वयोगसे अंगन्यास करे। तदनन्तर शुद्ध द्वादश-दल-हृदय कमलमें निज स्वरूपका ध्यान धरे। ये सब क्रियाएं सम्पन्न कर चुकनेपरही पूजाकार्य करना चाहिये।

जैसे काष्ठसे काष्ठको मथकर अग्नि निकाली जाती है और उसमें यज्ञ किया जाता है, वैसेही मंत्रयोगसे निष्कल सूर्यनारायण को मूर्तिमें स्थापन करके पूजा करनी चाहिये।

सूर्यनारायणके मन्दिरमें, नदीके किनारे, गोष्ठमें, उपवनमें, प्रफुल्लपद्म खण्डमें, जलाशय या नदीके निकट, नदियोंके संगम स्थानोंमें, तीर्थोंमें, वनमें, धर्मप्राणप्रदेशमें, हरेभरेभूमि-खण्डमें अथवा जहां भला मालूम दे वहां पूजा करनी चाहिये। भूमि-मयी, अर्कमयी, जलमयी, वायुमयी, कांचनी अथवा ताम्र प्रतिमामें पूजन करना उचित है।

मंत्रविधानरहित पूजा व्यर्थ रहती है। मंत्रविधानयुक्त पूज नमस्कारके साथही शतगुणित फलदायिनी हो जाती है। पू सामान्य, मध्यम और उत्तम तीन प्रकारकी होती है। क्रमशः सहर लक्ष और कोटि गुणित फल देनेवाली है। छोटी या सामान्य पूज पिण्डपूजा होती है। मध्यम पादपिण्डपूजा होती है। इन संक्षिप पूजाओंमें भी शोड़षोपचारसे पूजा होनी चाहिये। उत्त पूजामें व्योम, व्योमशिखादि मुद्राओंकी, वाहनकी, रथमें सा चलनेवाले सूर्यनारायणके भृत्यगणोंकी, रथकी, रथके अङ्गोंकी दिग्देवताओंकी भी पूजा विधिसहित की जाती है। आवाहन, स्थापनम्, संरोधन, सानिध्यम्, पाद्य-अर्घ्य, स्नान, वस्त्र, उपलेपन, पुष्प, धूप, दीप, भूषण तथा अन्य विधियोंसे पूरी पूजा करनाही उत्तम पूजा है। सूर्यनारायणकी पूजा करते समय, उनके प्रत्येक अङ्गकी पूजा की जाती है। दीपदान, बलिदान, अथातोर्घदान, जप, न्यास स्तवन, अग्निक्रिया, संहारमंत्र जप, शुद्धिमंत्र, जप-समर्पण निहारण और विसर्जन इन सनविधियोंसे पूजन करना होता है। भक्तिपूर्वक मंत्र बोलबोलकर देवताओंको निष्फलसे सकल मनाते हुए पूजा करनेसे देवता प्रसन्न होकर स्वयम् आते हैं। (ये पूजाविधि इसकेपूर्व आचुकी है)

माघमासके क्रमसे, प्रतिमास, सूर्यनारायण, इन बारह नामोंसे तपते हैं—१ अरुण, २ सूर्य, ३ अंशुमाली, ४ धाता, ५ इन्द्र, ६ रवि, ७ गभस्ति ८ यम, ९ स्वर्णरेतस, १० त्वष्टा, ११ मित्र, और १२ विष्णु।

सूर्यनारायणकी पूजाके समय इन बारह नामोंका पूजनभी, नामोंके आगे-पीछे 'ॐकार' और 'नमः' लगाकर करे। (यथा ॐ अरुणायहुं नम —ॐ सूर्यायहुं नमः इत्यादि) इसी प्रकारसे सूर्य-नारायणके रथके सातों घोड़ों और परिवार वर्गके जनोंके लिये भी ॐकारपूर्वक अन्तमें नमः लगाकर पूजन करे जिसका क्रम यह है:

अश्वोंकी पूजा

ॐ विश्वात्मने नम, ॐ हृदयशुक्रज्योतिषे नम, ॐ चित्रज्योतिषे नमः, ॐसत्यज्योतिषे नमः, ॐ ज्योतिष्मदग्नये नमः, ॐ शुक्राय नम, ॐ हरिताय नम, ॐ अत्यग्नये नम।

वासुकीकी पूजा

ॐ सर्पाय नम वासुकी हृदयम्। ॐ चित्रनाभये नम चक्र हृदयम्। इत्यादि १२ नामोंसहित।

सारथीकी पूजा

ॐ अरुणाय नम अरुणहृदयम्।

सूर्यनारायणकी पूजा

ॐ आदित्याय हे मिहिरागच्छगच्छ हूं स्वाहा ठ ठ·
(सर्वाल्हादन मंत्र)

ॐ खखोल्काय ठः ठ (मूलमंत्र.)

ॐ व्योम व्यापिने सर्वलोकाधिपतये तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ·
(स्थापन मंत्रः)

ॐ अर्काय ठः ठ हृदयम्। ॐ प्रदीप्ताय ठः ठः शिरः। ॐ विपिटये ठः ठः शिखाम्। ॐ जगच्चक्षुषे ठः ठः नेत्रम्। ॐ पद्माकराय हुं ठः ठः कवचम्। ॐ महातेजसे हुं ठः ठः फड़स्त्रम्। (शरीरस्पर्शन मंत्रः)

ॐ गंगणाधिपतये महत्त्विरणाय मंगेधात्मने नम (मंरोधनमंनः)

ॐ आकाश विकासिने जगच्चक्षुपे सान्निध्यं कुरु कुरु ठः ठः।
---- (संनिधान मंनः)

ॐ डगिटिचिटग्टये दीप्तांशये नमः। (पात्र मंनः)

ॐ गभस्तिने किलिकिलि कालिकालि सर्वार्थसाधिनी ककि ककि हुं नम ॐ सवित्रे वरुणाय नमः। (स्नान मंत्रः)

ॐ सप्तनेत्राय महस्रतनेन नमः (वस्त्र मंत्रः)

ॐ पिङ्गलायाञ्ले नमः (गंध मंत्रः)

ॐ हिलिहिलिमहामालाधर तेजोधिपतये नम (पुष्प मंत्रः)

ॐ ज्वलिताकाय नम (धूप मत्रः)

ॐ मिहिराय ज्वल विचित्ररत्नधारिणे नम (भूषण मत्रः)

मानुचर शक्तिपूजन

ॐ महाश्वेतायै नमः।	ॐ दण्डपाणये नम।
ॐ अरुणादेव्यै नम।	ॐ पिङ्गलायै नम।

१२ आदित्यनामोंकी पूजा

ॐ अरुणाय हुं नम।	ॐ सूर्याय हुं नम।
ॐ अशुमालिने हुं नम।	ॐ धात्रे हुं नम।
ॐ इन्द्राय हु नम।	ॐ रवये हुं नम।
ॐ गभस्तिने हुं नम।	ॐ यमाय हुं नम।
ॐ स्वर्णरेतसे हुं नम।	ॐ त्वष्टे हुं नमः।
ॐ मित्राय हुं नम।	ॐ विष्णवे हुं नमः।

अप्सराओं और रश्मिपतियोंकी पूजा

ॐ हरिकेशाय हुं नमः । ॐ रथकृच्छ्राय नमः ।
ॐ रथौजसे नमः । ॐ ॐ पुंजिकस्थलायै नमः ।
ॐ क्रतुस्थलायै नमः । ॐ विश्वकर्मणे हुं नमः ।
ॐ रथस्वनाय नमः । ॐ रथचित्राय नमः ।
ॐ मेनकायै नमः । ॐ सहजन्यायै नमः ।
ॐ विश्ववचसे नमः । ॐ रथप्रोताय नमः ।
ॐ अंशमाठराय हुं नमः । ॐ प्रम्लोचन्त्यै नमः ।
ॐ अनुम्लोचन्त्यै नमः । ॐ तार्क्ष्याय हुं नमः ।
ॐ अरिष्टनेमिने हुं नमः । ॐ विश्वाच्यै नमः ।
ॐ घृताच्यै नम । ॐ असर्वाग्वये हुं नमः ।
ॐ सेनाजिते हुं नमः । ॐ सुपर्णाय हुं नमः ।
ॐ उर्वश्यै नमः । ॐ पूर्वचित्त्यै नमः ।

गणाधिपोंकी पूजा

ॐ प्रदीप्ताननाय नमः । ॐ कुमाराय नमः ।
ॐ शृणिपाय नमः । ॐ अंगरुहाय नमः ।
ॐ विराजे नमः । ॐ केशिने नमः ।
ॐ सुरराजाय नमः । ॐ अरिष्टाय नमः ।
ॐ मापाय नमः । ॐ अनन्ताय नमः ।
ॐ निक्षुभाय नमः । ॐ तेजोरुहाय नमः ।

मातृका पूजन

ॐ क्षुपायै नमः ॐ मैत्र्यै नमः ।

ॐ प्रेमायै नमः । ॐ श्यामायै नम.।
ॐ रोचिषायै नमः । ॐ प्रदीप्तायै नमः ।
ॐ सुवर्चलायै नमः ।

ग्रह–नक्षत्र पूजन

ॐ चन्द्राय हुं नमः । ॐ शुक्राय हुं नम ।
ॐ वृहस्पतये हुं नम । ॐ अंगारकाय हुं नमः
ॐ शनैश्चराय हुं नमः । ॐ राहवे हुं नमः ।
ॐ केतवे हुं नमः । ॐ बुधाय हुं नमः ।

दिग्पाल पूजन

ॐ इन्द्राय सुराधिपतये नम ।
ॐ अग्नये तेजोधिपतये नम ।
ॐ यमाय प्रेताधिपतये नमः ।
ॐ निर्ऋतये रक्षोधिपतये नम ।
ॐ वरुणाय जलाधिपतये नम. ।
ॐ वायवे प्राणाधिपतये नमः ।
ॐ कुबेराय यक्षाधिपतये नमः ।
ॐ शङ्कराय सर्वविद्याधिपतये नमः ।
ॐ ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः ।
ॐ शेषाय सर्वनागाधिपतये नमः ।

ॐ तेजोधिपतये नमः (दीप मंत्रः)
ॐ अर्काय गृहाणामृतम् (नैवेद्य मंत्रः)

ॐ जलकुंदलाय दिव्याय तोद्यप्रियाय नमः (आतोद्य मंत्रः)

ॐ खखोल्काय ठः ठः (पाद्य मंत्रः)

ॐ अंशुमते देवाय गोपाय ठः ठः (पूजा जप न्यास मंत्रः)

नमस्कार—स्तोत्र

ॐ नमस्ते दिव्यरूपाय सर्व भूतात्मने नमः ।
सर्व तेजोधिपतये भानवे लोकचक्षुपे ।

आहुतियां देनेके लिये हविष्यान्न सहित या घृतकी आहुतियां ऊपरके सब नामोंको देनी चाहियें ।

उपसंहार मंत्रः

ॐ संहर संहर विरोचनाय ठः ठः।

शुद्धिमंत्रः

ॐ शान्तात्मने सर्वलोकप्रियाय ठः ठः।

आत्म निवेदन मंत्रः

ॐ खखोल्काय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि
तन्नो रविः प्रचोदयात्।

विसर्जन मंत्रः

ॐ गच्छ गच्छ स्वगर्गेण द्वादशादित्य विग्रहः ।

ॐ हिलिहिलि गच्छ देव यथागतः स्वाहा ।

निर्माल्य (प्रसाद) मंत्रः

ॐ चण्ड पिंगलाय ठः ठः ।

इसी विधिसे नित्य पूजन करना चाहिये — न हो तो प्रति-

रविवारको अवश्य करता रहे। विधि-विधान सहित पूजन करने का जो फल होता है वह भी सुनो।

आयु बढती है, आरोग्य मिलता है, ऐश्वर्यवृद्धि होती है, बलवृद्धि होती है, तेज मिलता है और यशभी बढता है। पुत्रों-की प्राप्ति अपुत्रोंको होजाती है। अन्तमें मोक्ष पाकर पूजा करने वाले सूर्यलोकमें जाते हैं।

देवोंका वचन है कि अतन्द्रित भावसे सदा सूर्यनारायण की पूजा करनी चाहिये। आचार्योंकी—गुरुओंकी भी पूजा करनी चाहिये जो सूर्यशास्त्रविशारद हों। प्रतिमासकी सप्तमीकी पूजामें पंचमीको सायंकाल केवल हविष्यन्न भोजन करके कुल्ला करले। फिर नियमपूर्वक व्रतका संकल्प करे। जो व्रतके लिये दीक्षित हो उसको छट और सप्तमीको १ व्यायाम, २ मैथुन, ३ क्रोध, ४ मत्स्य, ५ मांस, ६ गृन्जन, ७ हिंसा, ८ मधु, और ९ कांसीके वर्तनमें भोजन करनेसे बचना उचित है। इसी प्रकार तैल भी न छूना चाहिये। सर्वनिर्माल्यको अलंघनीय मानना चाहिये।

अष्टपुष्टिका विधिः

यह कथा सुनकर सांबने पूछा कि महाराज आपने यह सुनाया है कि सूर्यनारायण सकल भी हैं और निष्कल भी हैं—सगुण भी हैं और निर्गुण भी हैं। ये दोनों बातें एकसाथ कैसे सम्भव हैं, यह रहस्य भी आपही समझानेमें समर्थ हैं।

देवर्षिने कहा, सूर्यनारायणही सकल और निष्कल किस प्रकार हैं यह बात पूर्वकालमें स्वयम् ब्रह्माजीने मुझसे कही थी। वही

बात मैं तुझे बताता हूं। सृष्टिके आरम्भकालमें सूर्यनारायणमें सर्व जगत्व्यापार समाया हुआ था। द्रोह न था, अमल ज्ञान था, निरानंद और निरात्मक जगत था। जो सदसदात्मक नित्य अव्यक्त कारण स्वरूप है, जिसे तत्वविद प्रधान प्रकृति कहते हैं वह गन्ध-वर्ण-रस रूप शब्द-स्पर्श आदिसे रहित था। यही जगतके कारण सनातन सूर्यनारायण आरम्भमें थे। अति सूक्ष्म रूपमें त्रिगुण उनमें ही व्याप्त थे। इन्हींको पुरुषश्रेष्ठ और परमेश्वर कहा गया है। इन्होंने सारे चराचर जगतमें अपना विकास किया है। यह सृष्टिकी रचना करते हैं, यही प्रलय करते हैं। जब इनकी जगत पैदा करनेकी भावना हुई तो आप महदादि गुणयुक्त होकर तेजमय रूपमें प्रकट हुए। इसी को खखोल्क कहा गया है। योगस्थित सर्वतत्त्ववित् सूर्यदेवने प्रजा उत्पन्न करनेकी भावनासे पहले जलको रचा। उस जलमय जगतमें सूर्यनारायणही विराजमान थे इसीलिये इनका नाम नारायण हुआ है, क्योंकि नार जलको कहते हैं और अयन घरको। उक्त एकार्णवमें या निर्विभाग जलराशिमें सूर्यनारायण सौ—हजार दिव्य वर्षोंतक शयन करते रहे। फिर सूर्यनारायणने हिरण्मय स्वरूप ग्रहण किया जो अनेक शक्ति समन्वित है। इनको कोई खखोल्क कहते हैं, कोई संप्रकाशक कहते हैं, कोई विराट पुरुष कहते हैं तो कोई परब्रह्म पुकारते हैं। पांचों तत्वोंके पैदा करने वाले होनेके कारण निगमज्ञोंने सूर्यनारायणको खखोल्क कहा है। हिरण्मय, प्रकाशके आधार होनेसे यही हिरण्यगर्भ कहलाये हैं।

बड़े और प्रथम होनेसे इनको ब्रह्मा कहा गया है। सूर्यनारायण ही पुरमें (शरीरोंमें-आत्मरूपसे) शयन करते हैं इसीलिये इनकोही पुरुष कहा गया है। सब देवताओंमें बड़े होनेसे आप महादेव कहलाये हैं। सबके वश करनेवाले होनेसे महेश्वर आपही हैं। सूर्यनारायणमेंही समस्त प्रजा उत्पन्न होती है, अतः इनका नाम प्रजापति भी हुआ है। और आपही सर्वप्रथम अपने आप पैदा हुए इस लिये आपको स्वयंभू कहा गया है। आपकोही सहस्रशीर्ष, आपकोही सहस्रपाद, आपकोही सहस्रबाहु कहा गया है। संसारमें तेज-प्रकाश युक्त जो कुछ भी है उस सबकी उत्पत्ति खखोल्कमेंही हुई है। आप सर्वोपाधि विनिर्मुक्त, नित्य और सदसदात्मक हैं, विज्ञानगम्य हैं और अव्यक्त हैं। आपकोही जगतका परमकारण कहा गया है। इस अव्यक्तसे ही प्रकृति पैदा हुई है जो महान और सदसद्गुणात्मक है। इसके पश्चात् महत्तत्त्वसे अहंकार पैदा हुआ है। अहंकारसे सब इंद्रियोंकी उत्पत्ति है। इन तन्मात्रास्वरूप इंद्रियोंसेही सूर्यनारायणने सब भूतों की उत्पत्ति की है। चतुर्विध अव्यक्तान्तमूल कारण खखोल्कमें जब महदादि विकारोंसे जगत व्यक्त रूपमें आता है, तब मनकी शक्तिके योगमें पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। जो सूर्यनारायण अपनेमें सब पंचमहाभूतोंको लेकर तेजोराशि रूपमें सोते रहते हैं वे महाभूतादिके योगसे प्रतिबुद्ध होते हैं। इसके पश्चात् वेही त्रिगुणात्मक जगतकी रचना करते हैं। इस प्रकारसे जो सूर्यनारायण सप्ताश्व हैं और सहस्र किरण हैं वही जगतको सृजते हैं और वही

जगतको ग्रस लेते हैं। वही तपते हैं, वही प्रकाशते हैं, वही गर्जते हैं और वही बरसते हैं। उन्होंनेही तोयपति बड़वानलको पैदा किया है। उन्हींके नीललोहित रूपका नाम रुद्र और कालाग्नि है। सूर्यनारायण ही सर्वतेजोधिपति हैं। वह अनादि हैं, अनिधन हैं। वही ब्रह्मा हैं। वह क्षर भी हैं और अक्षर भी हैं। उनसे आगे कोई देवताओंमें देवता नहीं है। उन्होंने ही इस चराचर जगतको पैदा किया है। प्रलयकालमें यह चराचर जगत सूर्यनारायणमेंही समा जाता है। अपनी रश्मियोंसे चित्रभानु तीनों लोकोंको संतप्त करते हैं। इसीसे सब कामोंको सफल करनेवाली वर्षा होती है। इसी लिये इनको पर्जन्य कहा गया है। संहारकालमें द्वादशमूर्ति सूर्यनारायणही संवर्त्तक अनल होकर जगतको भस्म करते हैं। वही ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र स्वरूप हैं।

पूर्वमें उदय होकर, पश्चिममें अस्त होकर और मेरु पर्वतकी प्रद-क्षिणा करते हुए सूर्यनारायण ही तीनों लोकोंको प्रकाश और उष्णता देते हैं। वही सब प्राणियोंके शरीरमें हैं—उन्हींका आश्रय पाकर शरीर जीवित रहते हैं। इसलिये सूर्यनारायण अरुण भी कहलाये हैं। सूर्यनारायणसे शश्वतजगतकी उत्पत्ति है, उन्हींमें शश्वत जगत प्रतिष्ठित है। इसीलिये इनको निगमज्ञ मनीषिजनोंने सूर्य कहा है। अंशु नाम किरणोंका है इसीलिये सूर्यनारायण अंशुमान कह-लाये हैं। परमैश्वर्योंके स्वामी होनेसे आपका नाम परमेश्वर है। आप सुरासुरके स्वामी होनेसे इन्द्र कहलाते हैं। परिभ्रमण करते हुए निज प्रकाश और तेज द्वारा जगतकी रक्षा करते हैं और उसको

प्रकाशित करते हैं, इसलिये आपका नाम रवि है। किरणोंके स्वामी होनेसे गभस्ति नाम पाया है। स्वर्णिम रेतसे, आरम्भमें, आपने सृष्टि पैदा की है, इसीलिये देवताओंने आपका नाम सुवर्णरेता रखा है। सूर्यनारायणही प्रजाका सृजन करते हैं, अतः इनको त्वष्टा भी कहा गया है। सर्वौषधियोंको उत्पन्न करनेवाले और चराचर जगतका स्नेहपूर्वक पालन करनेवाले होनेसे आपका नाम मित्र रखा गया है। सूर्यनारायणकी किरणोंसेही जगत पैदा होता है, उनमेंही चराचर जगत स्थित है, इसीलिये इनको विष्णु नाम मिला है।

अति तेजधारी खखोल्क अर्थात सूर्यनारायणका मूलमंत्र ॐ कार सहित सप्तबीज युक्त है। इसमें प्रणव दीपक है। मकार साम्प्रदायिक है। स्वाहा और नमस्कारके साथ इस मंत्रसे पूजा होती है। 'खखोल्क' ये जो तीनवर्ण शेष रह जाते हैं, ये महाभूतोंके भेदसे पाच भागोंमें विभक्त होते हैं। इसमें 'ख' सूर्य और पार्थके योगसे शुद्ध आकाश तत्व है जो अनादि और अनिधन है। इसका गुण शब्द है। सञ्जनन और सर्जनवाला होनेसे 'क' वायु कहा गया है। इसकी उत्पत्ति पूर्व श्वास विकारसे है और इसका गुण स्पर्श है। 'ल' कार जल ह जो प्रलयपूर्ण है। 'क' कार पृथिवी है जो रूपगुण युक्त है। ॐ कारतो साक्षात (अग्नि) तेज रूपही है। इस प्रकारसे 'खखोल्क' का अर्थ पंचभूतात्मक होता है। प्राणादि पाच वायु, हाथ, पैर इत्यादि पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां, (सत-रज-तम) त्रिगुण, मन, बुद्धि, अहंकार-

इस प्रकार सब मिलाकर 'खखोल्क' मंत्रके १९ बीज हैं। कुल मिलाकर खखोल्काय २६ तत्वोंसे चराचर जगत आच्छादित हो रहा है।

सूर्यनारायणही अपनेसे जगतको पैदा करते हैं, अपनेमेंही उसका प्रतिष्ठापन करके रक्षा करते हैं और फिर अपनेमेंही सबको मिला लेते हैं। इनकाही नाम आदित्य है जो अपनी किरणोंसे जगतको ताप देते हैं। जैसे कच्चे घड़े आगमें पकाये जाते हैं वैसेही चारों ओरसे सूर्यरश्मिकी तापसे तीनों लोक तपते हैं। नदियोंमें, नालोंमें, समुद्रोंमें और अन्य जगहोंमें जितना भी जल है ये सब सूर्यनारायणकी किरणोंका प्रदान किया हुआ है।

सूर्यनारायणके अस्त होनेपर प्रकाश अग्निमें समा जाता है। फिर सूर्योदय होनेपर अग्निका प्रकाश सूर्यमें समा जाता है। इस प्रकार पारस्परिक निवेशनके साथ प्रकाश और उष्णताका क्रम चलता रहता है।

> एष ब्रह्माच विष्णुश्च एष देवो महेश्वरः।
> ऋचो यजूंषि सामानि एष एव न संशयः॥
> उद्यन्सदीप्यते ऋग्भिर्मध्याह्ने यजुर्भिस्तथा।
> सामभिश्चैव सायान्हे भास्करः प्रतपत्यसौ॥

यह सूर्यनारायण ही, वास्तवमें, ब्रह्मा हैं, यही विष्णु हैं और यही महेश हैं। सूर्यनारायण ही "ऋग्–यजु–साम" वेदमूर्ति हैं इसमें कोई संशय नहीं है। उदय होते समय सूर्य ऋग्वेद-मयी किरणोंसे प्रभा युक्त होते हैं, मध्यान्हकालमें सूर्यनारायण यजुर्वेद

मयी किरणोंसे प्रकाश देते हैं और सायंकालमें वही सामवेदमयी किरणोंमे प्रकाश देते हैं। भूलोकमें तीन रश्मियोंका, पितरलोकमें चार रश्मियोंका और सुरलोकमें तीन रश्मियोंका प्रकाश है।

सूर्यनारायणकी सहस्त्रकिरणोंमें सप्त किरण श्रेष्ठतम हैं जिनके नाम ये हैं: १ सुषम्ना, २ हरिकेश, ३ विश्वकर्मा, ४ विश्वव्यचा, ५ संयद्वसु, ६ उदावसु, ७ पुरा।

अपनी रश्मियोंसे सूर्यनारायण जगतको प्रकाशित और प्राणवान बनाते हैं। इनसे चन्द्रमाकी आभा बढ़ती और घटती है।

सर्वव्यापी दिवाकरके लिये जो याज्ञिक थोड़ा भी यज्ञयाग करते हैं उसका फल वह पापनाशी महात्मा बहुत देते हैं। उन्हीं सूर्यनारायणकी पूजा अर्चना और हवनविधि हमने तुम्हें बता दी है। यह भी बता दिया है कि सूर्यनारायण सकलभी हैं और निष्फलभी हैं।

सर्व हित फलप्रदाता सूर्यनारायण देवको नमस्कार है। यह वस्तु अदीक्षितको कभी न बतानी चाहिये। अदीक्षितको यह मंत्रतंत्र-विधि बतानेवाले शीघ्रही कोढ़ी होजाते हैं और अन्तमें नरकमें जाते हैं। यह वस्तु सद्कुलोत्पन्न, शीलवान, धर्माग्रही और प्रज्ञावान सूर्यभक्तकोही देनी चाहिये।

इति श्रीहिन्दी साबपुराणे सूर्यनारायणस्य तन्त्रपूजा
प्रकरण नामक एकपचाशत्तमोऽध्याय ॥ ५१ ॥